कामायनी - दर्शन

सं० —प्रतापचन्द्

- कामायनी : कथानक, आधार और मौलिकता
- कामायनी : सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि
- कामायनी : में मनोवैज्ञानिक आधार
- कामायनी : में मनोवृत्तियों की सजीव उद्भावना
- कामायनी : की रूपक कल्पना
- कामायनी : की ऐतिहासिकता
- कामायनी : में महाकाव्यत्व
- कामायनी : का लज्जा सर्ग
- कामायनी : का भाव पक्ष
- कामायनी : में नारी का आदर्श
- कामायनी : में श्रद्धा का तत्व और समरसता
- कामायनी : का भाषा सौन्दर्य
- कामायनी : विश्व समस्या का प्रतीक
- कामायनी : का अमर सन्देश
- कामायनी : लिखने का उद्देश्य
- कामायनी : में रहस्यवाद
- कामायनी : में प्रतीक
- कामायनी : के काव्य रूप पर प्रश्न चिन्ह

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक भवन, आ



कामायनी-दर्शन

[कामायनी पर सैद्धान्तिक निबन्ध]

सम्पादक

प्रताप चन्द जैसवाल

१९६७



प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा।

[...

१९६७]

⊙ प्रकाशक :

सरस्वती पुस्तक सदन,
मोतीकटरा, आगरा।

⊙ प्रथम संस्करण :

अप्रैल—१९६७

संवत्—२०२३

⊙ मुद्रक :

...शर प्रिंटिंग प्रेस, धूलिया गंज आगरा।

विषय-सूची

१

कामायनी : कथानक, आधार और मौलिकता

[श्री रघुवरदयाल वार्ष्णेय, एम० ए०, साहित्यरत्न, रिसर्च स्कॉलर]

कथानक—कंचन और कामिनी की वासना में देव संस्कृति लिप्त हो जाने से प्रकृति विक्षुब्ध हो उठी, अतः उसने प्रलय का रूप धारण कर लिया, उस भीषण जलप्लावन में एक महाविकराल मत्स्य के साथ थपेड़े खाती हुई एक नौका किनारे से आ टकराई। उस में एक पुरुष बैठा था। वट-वृक्ष से उस नाव को बाँध कर वह पुरुष पर्वत शिखर पर चढ़ गया और निराश-सा होकर वह गीले नेत्रों से उस प्रलय प्रभाव को देखने लगा। उसे देव जाति के दर्प,दम्भ और अनाचार पर पश्चाताप होने लगा। उसने यह अनुभव किया कि देव जाति अपने को अजर-अमर समझ कर कितनी भूल कर रही थी । प्रकृति वास्तव में दुर्जेय है

धीरे धीरे जलप्लावन समाप्त होने लगा। सर्वत्र एक नई आभा-सी छा गई। मनु जिज्ञासा सहित सोचने लगे कि इस परिवर्तन का संचालक कौन है। सूर्य, सोम और पवन किसके शासन में निरंतर नियमित रूप से कार्य कर रहे हैं। ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसके नियंत्रण में चल रहे हैं एक सारा संसार किसके इशारों पर नृत्य कर रहा है। इतना सोचते-सोचते उन्हें अपना एकाकी जीवन खलने लगा, उनके मन में स्वविस्तार की इच्छा होने लगी, अतः अग्निहोत्र से बचे हुए अन्न को अपने समान किसी अन्य की सत्ता की कल्पना से प्रेरित हो कर अन्य स्थान पर रखने लगे। ठीक उसी समय किसी ने मधुर वाणी में उनके एकाकी जीवन के बारे में प्रश्न किया। मनु ने चौक कर जैसे ही देखा तो अपने सम्मुख एक लम्बी काया को खड़ा पाया। निराश स्वर में मनु ने अपनी दीन-दशा का वर्णन किया। आगन्तुक ने अपना परिचय देते हुए कहा मैं अपने पिता की प्यारी सन्तान हूँ। ललित कला

ज्ञानार्जन के लिए भ्रमण करते करते जलप्लवन हो गया। यजमान को ढूंढ़ते ढूंढ़ते आपसे मिलाप होगया। मनु ने अपना जीवन उसको समर्पित करते हुए मानव-समाज-सृष्टि को कामना की।

श्रद्धा के सहयोग से मनु का जीवन उल्लासपूर्ण हो गया। अब श्रद्धा का सौंदर्य उनको अपनी ओर आकर्षित करने लगा। उस प्रकार विचार मग्न रहते हुए उनको नींद आगई, तभी उन्होंने एक स्वप्न देखा, जिसमें काम कह रहा था—

प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा, संतुष्ट ओघ से मैं न हुआ,
आया फिर भी वह चला गया, तृष्णा को तनिक न चैन हुआ।

इस सन्देश ने मनु के हृदय में सुप्त कामना को जागृत कर दिया। अब वह श्रद्धा से अपनी वासना उन्मेष की कहानी कहने लगे। वातावरण की उस रंगीनी ने श्रद्धा में भी एक विचित्र परिवर्तन-सा ला दिया। अब वह लज्जा का अनुभव करने लगी। अतः उसने लज्जा से प्रश्न किया कि तुम कौन हो जो मेरी स्वतंत्रता को छीनने के लिए तत्पर हो। मूकभाव से उत्तर देते हुए लज्जा ने कहा—मैं चंचल किशोर सुन्दरता की रखवाली करने वाली हूँ। मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ जो कानों में लाली के रूप में प्रगट हो जाती हूँ।

श्रद्धा की इस मसलन ने मनु को सोमयज्ञ करने के लिए प्रेरित किया और किलाताकुलि को उस यज्ञ का पुरोहित बनाया। किन्तु श्रद्धा इस अमानवीय हिंसावृत्ति से रूठ गई तथा उत्तेजित हो उठी। इस पर मनु ने नम्र होकर कहा—'वही करूंगा जो कहती हो, सत्य, अकेला सुख क्या ?' यह कहते हुए मनु ने सोमरस से भरे प्याले को श्रद्धा के ओठों से लगा दिया। दोनों मदहोश होकर आलंगिन बद्ध हो गये। इससे श्रद्धा गर्भवती हो गई।

मनु के मुँह खून लग लग चुका था, अतः वे मृगया और हिंसा में आनन्द लेने लगे। एक दिन वह मृगया से बहुत देरी से लौटे और श्रद्धा से दूर बैठ गये। कृश शरीर और गर्भभार के कारण श्रद्धा तकली छोड़कर धीरे-धीरे मनु के पास आई। किन्तु मनु ने उससे बिल्कुल मुहँ फेर लिया। अन्त मे श्रद्धा ने मुस्कराते हुए उनसे पूछा—तुमको हिंसा और मृगया से इतना प्रेम हो गया

है कि अपने शरीर की भी चिन्ता छोड़ दी है अनमने से होकर मनु ने उत्तर दिया कि तुम तो तकली में खोई रहती हो मानों तुम्हें धर्म से प्रेम ही नहीं है, बीज बीनने में लगी रहती हो मानो शिकार से तुम्हें कोई मोह नहीं है। कातने-बुनने का श्रम, यह थकावट और पीला मुख, यह सब किसके लिए। उत्तर में अहिंसा का सहारा लेते हुए श्रद्धा कहती है कि जीवित रहकर उपकार करने वाले प्राणियों की हत्या क्यों ? हमारा कर्तव्य तो जीवधारियों का पालन करना है। किन्तु मनु की अधिक तर्कना शक्ति देखकर विषय परिवर्तित करती हुई वह कहने लगी कि मैंने एक कुटी बनाई है, उसे चलकर देखें। मनु उस पर पूर्णतः शान्त रहते हैं अतः वह निराश होकर दूर चली जाती है और तकली कातती हुई कहती है कि भावी शिशु के आने पर तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरा संसार सूना नहीं रहेगा। मनु उसे सुनते ही ईर्षा से फुफकार उठते हैं और उसे अकेला छोड़ कर चले जाते हैं।

इधर-उधर भटकते हुए मनु सारस्वत नगर पहुँच जाते हैं। तभी काम उन्हें श्रद्धा की याद दिलाता है। एक क्षण रुक कर वे पुनः आगे चल देते हैं जहाँ उनका परिचय इड़ा से होता है। इड़ा उनका स्वागत करती है और सारस्वत नगर का शासनभार उनको सौंप देती है।

विरहिणी श्रद्धा एक दिन विचारों में उलझती हुई अपने पुत्र मानव कुमार के साथ सोगई, तभी उसने स्वप्न देखा कि दुखी मनु को इड़ा नामक स्त्री का सहारा मिला, और दोनों मिलकर उजड़े सारस्वत प्रदेश को पुनः बसाने का प्रयास करने लगे। किन्तु मनु ने इड़ा को भी अपनी वासना का शिकार बनाने का प्रयास किया, अतः वहाँ की प्रजा ने विद्रोह कर दिया। प्रकृति भस्म हो गई तथा पृथ्वी काँपने लगी। मनु ने उससे डर कर शयन कक्ष बन्द कर दिया। इस स्वप्न को देख कर श्रद्धा कांप उठती है। श्रद्धा का स्वप्न सत्य था। मनु शयनकक्ष में बन्द होकर कह रहे थे कि मैं प्रजा को संगठित करके प्रसन्न था, किन्तु इड़ा मुझको भी नियमों में आबद्ध करना चाहती है। मैं तो इड़ा पर अपना अधिकार चाहता हूँ। इड़ा उनको समझाने का प्रयास करती है किन्तु बाहर निकलती हुई इड़ा को वे पाश बद्ध करना चाहते हैं। यह देख-कर उपस्थित जनमानस उन्हें युद्ध के लिए ललकार देता है। मनु अपना प्रचण्ड

अस्त्र सँभाल लेते हैं, और खून मुहँ लगाने वाले किलाताकुलि को अगुआ देखकर उनको नष्ट कर देते हैं। किन्तु तीर के बाणों की चोट से वे घायल हो कर गिर पड़ते हैं।

उसी रात्रि को श्रद्धा 'अरे बता दो मुझे दया कर कहाँ प्रवासी मेरा' कहती हुई सारस्वत प्रदेश में प्रवेश करती है। इड़ा उसका परिचय पूछती है और प्रवासी के बारे में जानने की उत्कण्ठा प्रगट करती है। उसका और प्रवासी का परिचय पाकर वह श्रद्धा को मनु के पास लाती है। मनु की दीन-दशा देख कर वह सन्न रह जाती है। वह उन्हें सहलाने लगती है। स्पर्श से शीतलता का अनुभव करते ही मनु अपने नेत्र खोल देते हैं। श्रद्धा को देखते ही उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं। श्रद्धा अपने पुत्र मानव से पिता दर्शन के लिए कहती है तभी पुत्र के मुहँ मे निकल पड़ता है—"माँ जल दे कुछ प्यासे होंगे, क्या बैठी कर रही यहाँ ?"

इस प्रकार वहां सारा वातावरण महक उठता है। किन्तु मनु इस क्षुब्ध वातावरण से शीघ्र चलने का आग्रह करते हुए कहते हैं कि श्रद्धे ! तुमने मेरी साध को पुनः जीवित कर दिया, किन्तु मैं इतना नीच हूँ कि तुम्हारे मगंलमय सन्देश को न सुन सका। मनु शर्म के कारण श्रद्धा के सामने आने से कतराते हैं, अतः वे एक बार फिर श्रद्धा को छोड़कर चले जाते हैं। श्रद्धा का जीवन एक बार फिर सूना हो जाता है। उसी समय मानव आकर श्रद्धा की विचारधारा को तोड़ देता है। इड़ा उससे क्षमा याचना करती है किन्तु श्रद्धा इतना भर कहती है कि तुमसे विरक्ति कैसी ? तुमने तो मेरी अनुपस्थित में मनु की रक्षा की इस पर इड़ा उत्तर देती हुई कहती है कि यहाँ पर तो सभी अपराधी हैं। मनुष्य की अधिकार लिप्सा ही उसकी उन्नति में बाधक होती है एवं शत्रु उत्पन्न करती है, इसीसे वर्ग विभाजन होता है। चाहे लोग मुझे जनपद कल्याणी कहते हों किन्तु आज में अवनति का कारण बन रही हूँ। इसीलिए मेरे ही बनाये हुए नियम मेरे ही सम्मुख टूट रहे है, और मैं सभी प्राणियों को विनाश की ओर ले जारही हूँ। अतः मुझे क्षमा करदो। हे देव ! मैं सुपुप्त अवस्था से जाग रही हूँ।

श्रद्धा ने कहा—वास्तव में तू तर्कमयी है अतः सदा सिर पर चढ़ी रहती है, तुझे हृदय नाम की कोई वस्तु नहीं मिली। तूने चेतना का भौतिक विभाजन कर दिया है, इसीलिए संसार में विराग का वितरण हो गया है। यह संसार तो राग के द्वारा ही जीता जा सकता है। मैं लोकरूपी अग्नि में तप कर आहुति देती परन्तु क्षमा मांग कर मुझसे कुछ लेना चाहती है। मेरे पास तो यही कुमार है। उसके साथ तुम राष्ट्रनीति देखो और ऐसा शासन करो कि भय के स्थान पर प्रेम प्रसारित हो। मानव को देख कर वह मनु को ढूँढ़ने चल देती है। दूर से ही उसे एक जीवधारी दिखाई देता है, वे ही मनु थे।

श्रद्धा ने नतमस्तक होकर बड़े ही कोमल स्वर में कहा कि आज का यह गहन अंधकार मुझे उस दिन की याद दिलाता है, जिस दिन मैंने निष्कपट भाव से तुम्हारे सम्मुख आत्म समर्पण किया था अतः क्या मैं उस दिन को भूल सकती हूँ। उस समय मनु निर्निमेष नेत्रों से शून्य की ओर देख रहे थे। शनैः शनैः चारों ओर आलोक छाने लगा। उस आलोक में ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो नटराज ताण्डव नृत्य कर रहे हैं एवं अनाद्य नाद गुंजरित हो रहा है।

गिरिराज हिमालय पर दोनों पथिक बढ़ते जारहे थे, आगे श्रद्धा और पीछे मनु। चढ़ते-चढ़ते मनु थक गये, अतः लौटने का आग्रह करने लगे। किन्तु श्रद्धा ने उन्हें आस्वस्त करके सहारा दिया। वे अब एक ऐसे स्थान पर पहुँच गये जहाँ ग्रह नक्षत्रों की सत्ता ही न थी। केवल तीन आलोकित चिन्ह दिखाई देते थे। इन के बारे में मनु के पूछने पर श्रद्धा कहती है कि सामने कन्दुक के समान कमानीय रमणीय आलोकित और भाव पूर्ण प्रतिमा से युक्त मन्दिर इच्छा लोक है! यहां फिर वसन्त और फिर पतझड़ दोनों ही साथ साथ रहते हैं। अमृत और हलाहल सुख और दुख दोनों ही एक डोरी से बँधे हैं। श्याम वर्ण का कर्म लोक है। यहीं से एक प्रकार की एषणा का जन्म होता है। ज्ञान लोक में सुख-दुख उदासीन होते हैं तथा यहाँ निर्मम न्याय चलता है। इन्हीं को त्रिपुर कहते हैं। तब तक इनमें समरसता उत्पन्न नहीं होती यहाँ सुख दुख ही रहता है।

इन तीनों लोक रूपी त्रिकोण में महाकाल का भीषण नृत्य चल रहा था। स्वप्न सुषुप्ति और जागरण भस्म हो गये थे। इच्छा क्रिया और ज्ञान का मिलन हो गया था, अनाद्य नाद हो रहा था जिसको सुनकर मनु, तन्मय से हो रहे थे

इसी समय यात्रियों का एक और दल धर्म के प्रतिनिधि श्वेत वृषभ और घण्टे की ध्वनि के साथ उधर ही आरहा था। वृषभ की रस्सी मानव के बायें हाथ में थी। मार्ग ढालू था। इड़ा वहाँ के दृश्यों से प्रभावित हो रही थी। और इसी समय इस दल ने श्रद्धा और मनु को देख लिया। बस फिर क्या था मानव श्रद्धा की गोदी में बैठ गया और इड़ा उसके चरणों में गिर पड़ी एक विगत प्रेम से सारा वातावरण ज्योतिर्मय हो उठा। जड़ और चेतन समरस हो गये एवं चारों ओर एक असीम आनन्द छा गया—

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।

कथानक के आधार—प्रसाद जी ने कामायनी के आमुख में यह स्वीकार किया है कि आर्य साहित्य में मानव के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराणों और इतिहासों तक बिखरा हुआ मिलता है। इन सभी स्रोतों से प्रसाद जी ने कथा का एकत्रीकरण किया है। वैदिक साहित्य में जल प्लावन की कथा 'मनु मर्म' शीर्षक के अन्तर्गत आई है। शतपथ में इसे ओघ कहा गया है। ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराण में नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक तीन प्रकार की प्रलयों का वर्णन आया है। श्रीमद्भागवत पुराण में नित्य प्रलय का विशद वर्णन किया गया है। आंशिक रूप से प्रलय का वर्णन नारदीय सूक्त जैमिनी ब्रह्माण में भी मिलता है। महाभारत और मत्स्यपुराण में तो पूर्ण विस्तार के साथ जल प्लावन की कथा आई है। अग्नि पुराण एवं भविष्यपुराण में भी मनुमत्स्य की कथा मिलती है, किन्तु यहाँ पर मनु का नाम न्यूह हो गया है। इसमें न्यूह को आदम की सन्तान बताया गया है। बौद्ध जातकों के मच्छ जातकों में बोधिसत्व के मछली योनि में जन्म लेने की कथा आती है। सीयनिसंस जातक में समुद्र के देवता द्वारा एक सदाचारी नाई को नौका में बैठाकर संसार की यात्रा कराई है। जैन ग्रथों में मनु का स्पष्ट वर्णन आया है। इनमें कहा गया है कि क्षार, अग्नि, विष, अमृत तथा विद्युत से युक्त मेघ सात दिन तक वर्षा करेंगे तथा उससे समस्त कुत्सित वातावरण समाप्त हो जाएगा तथा नवीन युग के प्रादुर्भाव होने पर मनु नामक प्रथम व्यक्ति होंगे। इसी प्रकार यूनानी बेबीलोनियन चोडिल्य आदि साहित्य

एवं बाइबिल और कुरान में भी जलप्लावन सम्बन्धी कथाएँ किसी न किसी रूप में मिलती हैं। किन्तु कामायनी की कथा अधिकतर भारतीय साहित्य के कथानक पर आधारित हैं।

मनु और श्रद्धा के सम्बन्ध में वेदों में स्पष्ट वर्णन आया है। पुराणों में चौदह मन्वन्तर बता कर प्रत्येक के एक-एक मनु का वर्णन किया है। कामायनी के मनु इनमें से सातवें वैवस्वत मनु हैं। इनके जन्म की कथा ऋग्वेद के दसवें मण्डल में मिलती है। इसी प्रकार की कथा वृहद्देवता में भी आई है, किन्तु पुराणों में इसका रूप बदल गया है। इसके अनुसार जलप्लावन के बाद मनु एक रमणीय गुफा में रहने लगते हैं और वहीं वे पाक यज्ञ की योजना करते हैं, किन्तु ब्राह्मणों में उनको दधि और घृत का यज्ञ करते हुए दिखाया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद में मनु को सन्तानोत्पत्ति के लिए जाया की आवश्यकता से प्रेरित दिखाया है। 'कामायनी' में भी इसी प्रकार का वर्णन प्रसाद जी ने किया है। श्रद्धा का मिलन उनको इसी इच्छा की पूर्ति करता है।

ऋग्वेद में यह स्पष्ट लिखा है कि श्रद्धा कामगोत्र में उत्पन्न होने के कारण कामायनी थी, आगे उसे सूर्य की पुत्री भी कहा है। यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण में भी उसे सूर्य की पुत्री स्वीकार किया है किन्तु उपनिषद में उसे ब्रह्म की पुत्री कहा गया है। पुराणों में इसे दक्ष प्रजापति कन्या स्वीकारा है। प्रसाद ने ऋग्वेद से कामायनी का रूप ग्रहण किया है। उसके विवाह के लिए उन्होंने शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, ब्रह्मवैवर्त्त, हरिवंशपुराण एवं शिवपुराण की सहायता ली है। श्रीमद्भागवत में तो स्पष्टतः श्रद्धा को मनु की स्त्री कहा है एवं उससे दस पुत्रों की उत्पत्ति बताई है।

किलाताकुलि का वर्णन ऋग्वेद में आया है। वहां इनको सुबन्धु नामक पुरोहित का घातक बताया गया है। शतपथ ब्राह्मणों में ये मनु को यज्ञ के लिए प्रेरित करते हुए दिखाये हैं। प्रसाद ने यहीं से प्रेरणा लेकर इन दोनों का रूप प्रस्तुत किया है। सारस्वत नगर में किलाताकुलि का वर्णन ऋग्वेद के आधार पर किया है। सोमरस का वर्णन तो वेदों में आगा ही है।

इड़ा के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रन्थों का विभिन्न दृष्टिकोण है। ऋग्वेद में इड़ा को मनु की धर्मोपदेशिका, मनुष्यों पर शासन करने वाली आदि बताया है एवं उसे अग्नि की पुत्री कहा है। शतपथ ब्राह्मण, हरिवंशपुराण, ब्रह्मपुराण विष्णुपुराण एवं श्रीमद्भागवत् में मनु के यज्ञ के अवशिष्टान्न से पत्नी होने के कारण इड़ा को उनकी दुहिता कहा है। किन्तु प्रसाद ने इड़ा के साथ अनैतिक आचार का वर्णन किया है जो दुहिता के साथ उचित प्रतीत नहीं होता, अतः उन्होंने इसके लिए एतरेय ब्राह्मण को आधार बनाया है।

शिव ताण्डव स्तोत्र और शिव महिमा स्तोत्र के आधार पर शिव जी ने ताण्डव की योजना की है। त्रिपुरा और त्रिकोण के वर्णन के लिए कवि ने ऋग्वेद यजुर्वेद और शतपथ ब्राह्मण की सहायता ली है। इस प्रकार विभिन्न आधारों पर आधारित होने के कारण कामायनी की कथा पूर्णतः ऐतिहासिक स [illegible] गई है।

मौलिकता—मनु की इस विशृंखलित कथा को प्रसाद जी ने अपने अथक प्रयास से शृंखला बद्ध किया है। शतपथ ब्राह्मण में यह कथा बहुत ही संक्षेप में आई है। रामायण और महाभारत में इसका रूप पूर्णतः बदल गया है। बाद के समस्त ग्रन्थों को कथा इसी प्रकार बदलती गई है। अन्य समस्त ग्रन्थों में इड़ा को मनु की दुहिता कहा है, किन्तु प्रसाद ने कथा निर्वाह के लिए उसमें एक मौलिक परिवर्तन ला दिया है। प्रसाद जी मनु की भेंट पहले श्रद्धा से कराते हैं जबकि अन्यत्र मनु पहले इड़ा से मिलते हैं। इड़ा से मिलने पर मनु उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते हैं, परिणामतः जन-विद्रोह होता है और मनु घायल हो जाते हैं। यह समस्त कथा के पीछे प्रसाद जी की नैतिक मर्यादा झांक रही है, साथ ही उससे कवि को कथा-प्रवाह में भी सहायता मिली है।

अपनी निष्काम भावना और दान प्रियता के कारण प्रसाद जी ने जल-प्लावन के बाद मैत्र-वरुण यज्ञ के स्थान पर पाक यज्ञ कराया है। इसी के कारण मनु और श्रद्धा का साक्षात्कार होता है। रूपक निर्वाह के लिए भी कवि ने कथा में परिवर्तन किया है। इस संसार में अतिचार करने वाला मनुष्य सदा दुखी रहता है, इस नीति वाक्य की उपलब्धि के लिए कवि ने सारस्वत

की कथा और किलाताकुलि के कथानक की संयोजना की है । अन्य सभी ग्रन्थों में मनु के दस पुत्र बताए हैं, किन्तु प्रबन्धात्मकता रखने के लिए प्रसाद जी ने केवल एक पुत्र मानव कुमार की ही चर्चा की है ।

पापाचारों के कारण जब मनु निराश होकर अकर्मण्य हो जाते हैं तब श्रद्धा के भाषण की योजना भी कवि की अपनी देन है । इससे प्रसाद जी ने यह सिद्ध किया है कि निवृत्त मार्ग से प्रवृत्तमार्ग श्रेष्ठ है । इसीलिए श्रद्धा मनु को प्रवृत्तमार्ग पर ले जाकर लोक मंगल के दर्शन कराती है । श्रद्धा का स्वप्न-दर्शन, मनु की खोज, मानव का स्वप्न एवं नवीन सभ्यता के लिए अपने इकलौते पुत्र को इड़ा के लिए सौंपना तथा मनु को शान्ति पथ पर ले जाना आदि सब कवि की अपनी उपज हैं । इससे कथानक और रचना दोनों प्रभावशाली हो गये हैं ।

इनके साथ-साथ इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी मौलिकता है 'काम का सन्देश' । प्रसाद जी ने उसके द्वारा प्रकृति के मूल में व्याप्त काम के विशुद्ध रूप को दिखाने का प्रयास किया है । श्रद्धा को काम की पुत्री कहा गया है, पिता होने पुत्री का हाथ सुयोग्य वर को देना भारतीय परम्परा है ! कुमार्ग पर जाते हुए जामाता को सुमार्ग पर लाना भी उसी का कार्य है । इसका पूर्ण पालन प्रसाद जी ने काम के सन्देश से कराया है । अहिंसावाद, वात्सल्य, प्रेम गृह-निर्माण यंत्रवाद के विरुद्ध आनन्दवाद की स्थापना एवं भौतिकवाद के विरुद्ध आध्यात्म की पुकार आदि सब प्रसाद जी की अपनी देन है ।

इड़ा और मनुपुत्र को मिलाने का उद्देश्य बुद्धि और हृदय का समन्वय कराना है जिससे सभ्यता और शासन में शालीनता और कोमलता का प्रादुर्भाव हो । त्रिपुर दर्शन, शिव का ताण्डव नृत्य एवं सारस्वत नगर वासियों की कैलाश यात्रा आदि सबमें प्रसाद जी की कोमल भावना बोल रही है । इसमें एक और उन पर शैव दर्शन का प्रभाव लक्षित होता है और दूसरी ओर कथानक प्रवाहशील हो गया है । अस्तु ।

२

कामायनी—सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि

[डॉ० प्रेमदत्त शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०]

प्रसाद के समय विज्ञान की विभीषिकाओं और परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़े हुए भारतीयों के सम्मुख संस्कृति की भावना म्लान दिखाई देने लगी थी। प्रसाद ने एक चिकित्सक की भाँति उसका उपचार करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अतीत को 'कनक किरण के अन्तराल' के माध्यम से देखा और उससे जो कुछ ग्रहण किया उसे अपने साहित्य में प्रत्यावर्तित किया। उनके साहित्य की आधार शिला बनी—भारतीय संस्कृति।

कामायनी में भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वरूप निहित है। प्रसाद ने इस कृति में भारतीय संस्कृति के बिखरे हुए अवयवों द्वारा वस्तु की दीवार खड़ी करने का प्रयत्न किया है। कामायनी की कथा पौराणिक है। इसमें आये हुए मनु, श्रद्धा, इड़ा, किलात और आकुलि पात्र ऐतिहासिक हैं।[1] जल प्लावन की घटना प्राचीन है।[2] नौका का हिमगिरि प्रदेश में पहुँचना,[3] मनु का श्रद्धा से मिलन,[4] किलात-आकुलि पुरोहित को हिंसा यज्ञ करने की प्रेरणा देने[5] सम्बन्धी घटनाएँ पौराणिक काल पर आधारित हैं। यज्ञ के उपरान्त

१—(i) शतपथ ब्राह्मण, १ । १ । ४ । १५

(ii) ऋग्वेद, १० । १५१ । १-४, ६ । १ । ६, १० । ५७

२—शतपथ ब्राह्मण, आठवां अध्याय

३—वही ८ । १ । ३

४—(i) भागवत पुराण ६ । १ । १४

(ii) ऋग्वेद, १०।११।१५१

५—शतपथ ब्राह्मण, ३।७।३।२-४

सोमरस पान करने का वृतान्त ऋग्वेद में मिलता है।[1] मनु सारस्वत प्रदेश में नियमन-कार्य करते हैं।[2] वहाँ प्रजापति अपनी दुहिता का आलिंगन करते हैं।[3] देवताओं द्वारा रुद्र से इस अत्याचार की प्राथना करना तथा उसके उपरान्त संहार सम्बन्धी घटनाएँ शतपथ ब्राह्मण में मिलती हैं।[4] कामायनी में देव संस्कृति के ध्वंस के उपरान्त मानवी सृष्टि के आरम्भ का वर्णन हुआ है, जो तत्कालीन है। इसमें आदिकालीन पुरुष तथा स्त्री के सहयोग से मानव के विकास की कहानी है। कामायनी में आये हुए कैलाश,[5] हिमालय,[6] गांधार, सारस्वत प्रदेश सप्तसिन्धु एतिहासिक स्थान हैं।[7]

प्रसाद ने उक्त ऐतिहासिक घटनाओं को ज्यों का त्यों प्रदर्शित करने के साथ-साथ कुछ परिवर्तन भी कर दिया है इससे मौलिकता आ गई है। पाकयज्ञ के अवशिष्ठ अंश को देखकर मनु के पास श्रद्धा का पहुँचना, उसका मातृत्व, अहिंसोपदेश, तकली कातना, ऊन की पट्टी बनाना, पशु पालन, पुत्र-प्रेम का आकर्षण तथा मनु की ईर्ष्या, उनका सारस्वत प्रदेश में चला जाना, मनु पर प्रजा का आक्रमण, स्वप्न देखकर युद्ध-भूमि में पड़े हुए मूर्च्छित मनु के पास श्रद्धा का पहुँचना, ग्लानिवश मनु का चला जाना, श्रद्धा द्वारा मनु की पुनः खोज एवं मिलन, मनु-श्रद्धा की कैलाश यात्रा, इड़ा मानव मिलन, इड़ा-मानव का सारस्वत प्रदेश के निवासियों सहित कैलाश दर्शन के लिए प्रस्थान सम्बन्धी घटनाएँ कवि कल्पित हैं।

प्रसाद ने इस एतिहासिक आधार में परिवर्तन इस लिये किया कि वे श्रद्धा में नारीत्व और मनु में श्रद्धा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। इसी कारण

१—ऋग्वेद, ८।४८।३

२—वही, १।१३।११

३—शतपथ ब्राह्मण, ७।४

४—शतपथ ब्राह्मण, १।७।४

५—वही, १।७।४

६—अथर्ववेद, ६।३६।७-८

७—डा० द्वारिकाप्रसाद, कामायनी काव्य, संस्कृति और दर्शन पृ० ७१-७२

श्रद्धा अपने सम्पूर्ण नारीत्व स्वरूप को मनु के आगे समर्पित करती है। श्रद्धा का अहिंसोपदेश, तकली कातना, ऊन की पट्टी बनाना तथा पशुपालन की भावना गांधीवादी प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती है। इतिहास को एक विस्तृत रूप न देकर मनु के एक पुत्र मानव का ही वर्णन किया है। सारस्वत प्रदेश पर हुये अत्याचार को प्रदर्शित करने में प्रसाद का लक्ष्य आधुनिक शासक एवं शासित के बीच हुए संघर्षों को प्रदर्शित करना था। इन परिवर्तनों से कल्पना ने इतिहास के विकीर्ण सूत्रों को संकलित करने में बड़ा योग दिया है।

उक्त परिवर्तनों में भूत से भविष्यत् तक के सम्बन्ध सूत्रों को मिलाने की प्रवृत्ति ही नहीं, प्रत्युत्त लोक मानस को छूने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। श्रद्धा को इड़ा की बराबरी प्रस्तुत करके प्रसाद ने हृदय और बुद्धिभाव को महत्ता प्रदान की है।

ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से प्रसाद के तत्कालीन सामाजिक-व्यवस्था का जो सजीव चित्र प्रस्तुत किया है, वह अमूल्य है। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख करके वर्तमान समाज को जर्जरता और विषमता को पाठकों के सामने रखना था। इतना ही नहीं वर्तमान समाज में जो बिखराव आ गया था उसको दूर कर प्रसाद ने नये सांस्कृतिक ढांचे में समाज को ढाल कर उसे उद्बोधन के पथ पर अग्रसर किया।

सामाजिक-व्यवस्था में विवाह का प्रमुख स्थान है। कामायनी में हमें गांधर्व विवाह का उल्लेख सांकेतिक रूप में मिलता है, जहाँ मनु-श्रद्धा का विवाह दोनों की स्वेच्छा से सम्पन्न होता है। श्रद्धा आँसू से भीगे अंचल पर अपनी स्मित रेखा से संधि पत्र लिखती है।[1]

कामायनी में कवि ने नारी महत्ता को प्रतिपादित किया है। प्रसाद नारी करुणा और त्याग की मूर्ति बतलाते हुए उसे पुरुष के समक्ष महत्व पूर्ण स्थान प्रदान करते हैं—

---

१ - "आँसू से भीगे अंचल पर, मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित-रेखा से, यह सन्धि-पत्र लिखना होगा।"

कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० १०६

"तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में, कुछ सत्ता है नारी की,
समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की।"[१]

गृहस्थ जीवन में स्त्री और पुरुष का स्थान उच्च बतलाया गया है। शतपथ ब्राह्मण और महाभारत में स्त्री को पुरुष की आत्मा का आधा भाग मान कर स्त्री के विना पुरुष का जीवन अपूर्ण बतलाया है। पतिव्रत धर्म में पति या पत्नी के कुमार्ग पर जाने पर उसे सन्मार्ग पर लाने का कार्य दोनों का ही है। कामायनी में श्रद्धा अपने पति मनु का पथ प्रदर्शन करने वाली है। मनु अपनी पत्नी की उपेक्षा करते हुए विलासिता के गर्त में डूब कर, सारस्वत प्रदेश में इड़ा की ओर आकृष्ट होते हैं। उनके हृदय में चंचलता, आसक्ति और अहंकार जैसी दुर्वृत्तियां स्थान पा लेती हैं परन्तु उनको आदर्श पत्नी—श्रद्धा के सहयोग से ही धीरे;धीरे इन दुर्वृत्तियों का निराकरण होता है और वे ज्ञान कर्म और इच्छा के मार्ग से समरसता को प्राप्त हो कर अखण्ड आनन्द का लाभ प्राप्त करते हैं। तुलसी के दोहे से उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है जहाँ वे नारी का धर्म मनसा वाचा और कर्मणा से पति पद प्रेम को महत्ता देते हैं।

राजनीति के क्षेत्र में प्रसाद ने विभिन्न मान्यताओं का प्रतिपादन भारतीय संस्कृति की आधारशिला पर किया है। प्रसाद सर्वत्र गणतन्त्र में विश्वास करते दीख पड़ते हैं इसीलिए उन्होंने कामायनी में प्रजा का स्थान महत्वपूर्ण बतलाया है। अत्याचारी शासक अपनी मनमानी राह पर नहीं चल सकते थे फिर भी यदि चलते थे तो उन्हें प्रजा द्वारा दन्डित किया जाता था। तत्कालीन समाज की न्याय व्यवस्था प्रजा के महत्व को प्रतिपादित करती है। प्रसाद ने राजनीति के अन्तर्गत उन तत्वों का विश्लेषण और विवेचन किया

१—कामायनी, पृ० १६२

२ - शतपथ ब्राह्मण, ५।२।१।१०

३—महाभारत, आदि पर्व, ७४।४०

४—........ .... नारी,

आपद काल परिखियऊ चारी। आर० ४।७

है, जिसके भारतीय जनता से हृदय में राष्ट्रीयता की भावना पनप सके और वे अत्याचारी अंग्रेज शासकों की दासता का खुल कर विरोध कर सकें। इस प्रकार प्रसाद का उद्देश्य प्राचीन राजनीत पृष्ठ भूमि के माध्यम से राजतन्त्र पर गणतन्त्र की श्रेष्ठताओं को प्रतिपादित करता है।

सारस्वत प्रदेश के प्रजापति मनु इस संसार में अपनी सत्ता को स्वतन्त्र मानते हुए उस पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं स्वीकारते। यहाँ तक कि वे काल से भी नहीं डरते।[1] इड़ा मनु को समझाने का प्रयत्न करती है।[2] वह बतलाती है कि प्रजा दुखी है और वह अपने प्रजापति से आश्रय चाहती है—

'प्रजा क्षुब्ध शरण मांगती उधर खड़ी है।"[3]

मनु इड़ा के शब्दों पर ध्यान न देकर इड़ा का शील भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। प्रजा अपने शासक के इस अशिष्ट अत्याचार को नहीं देख सकी। वह अपने प्रजापालक को फटकारती है।[4] और उससे इस अत्याचार का बदला लेती हैं अंत में मनु जहाँ खड़े थे वहीं मरणासन्न अवस्था में गिर जाते हैं।

प्रसाद की यह राज्य-व्यवस्था भारतीय परम्परा से अनुमोदित है। मनुस्मृति में चर और अचर की रक्षा के लिए राजा का अस्तित्व अनिवार्य बतलाया गया है।[5] यदि शासक प्रजा के मान्य नियमों के विरुद्ध आचरण करता है और प्रजा के कल्याण की प्रतिज्ञा को भंग करता है तो वह प्रजा द्वारा दण्डित होता है। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिल जायेंगे। वेण (महाभारत), मगधनरेश नागदवाक (महावंश);

१—मैं चिर-बन्धनहीन मृत्यु-सीमा उल्लंघन, करता सतत चलूँगा यह मेरा है दृढ़ प्रण। कामायनी (संघर्ष सर्ग, पृ० १९७)

२—कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृ० १९२

३—वही, पृ० १९५

४—"और इड़ा पर यह क्या अत्याचार किया है ?
इसीलिए तू हम सबके बल यहाँ जिया है ?"

कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृ० १९९

५—मनुस्मृति, ७।३

राजा पालक (मृच्छकटिक) तथा राम गुप्त (देवी चन्द्रगुप्तम्) ऐसे ही शासक थे जिन्हें राजपद से हटाया गया था।[1]

प्रसाद राजनीति के क्षेत्र में धर्म को घसीटना नहीं चाहते। उनका विचार था कि जब किसी धर्म-विशेष का सम्बन्ध राजनीति से हो जाता है तो फिर अन्य धर्मावलम्बियों का शोषण और उत्पीडक होने लगता है। उनके साहित्य में स्थान-स्थान पर ऐसे संकेत मिलते हैं जहाँ उन्होंने राज्य को धर्म निरपेक्ष होना आवश्यक बतलाया है। वे मानव की चतुर्दिक उन्नति को प्रश्रय देते हैं।

कामायनी में उनकी आशावादी प्रवृत्ति कार्य कर रही है—

"विधाता की कल्याणी सृष्टि
सफल हो इस भूतल पर पूर्ण,
पटे सागर, बिखरें ग्रह-पुंज
और ज्वाला मुखियाँ हों चूर्ण,
उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प
कुचलती रहे खड़ी सानन्द;
आज से मानवता की कीर्ति
अनिल, भू, जल में रहे न बन्द।"[2]

× × × × ×

"शक्ति के विद्युतत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरें हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उसका करें समस्त
विजयनी मानवता हो जाय।"[3]

१—यदुनन्दन कपूर, "धर्म-निरपेक्ष प्राचीन भारत की प्रजातान्त्रिक परंपराएँ," पृ० ७९

२—कामायनी- श्रद्धा सर्ग, पृ० ५८

३—कामायनी, श्रद्धा सर्ग, पृ० ५९

कामायनी में धर्म-यज्ञ-कर्म, संस्कार, देवस्वरूप आदि सारणियों में प्रस्तुत हुआ है। याज्ञिक कर्मकाण्ड के अन्तरगत दैनिक जीवन के पंच-महायज्ञ का प्रमुख स्थान है। गृहस्थ-जीवन में दैनिक कार्यक्रम के लिए पंच महायज्ञों (ब्रह्म, पितृ, देव, भूत तथा नृ) का उल्लेख है।[१] कामायनी में इन यज्ञों में से ब्रह्म देव, और भूत यज्ञ का उल्लेख हुआ है। मनु यज्ञ के पश्चात् प्रज्ज्वलित अग्नि के समीप बैठे हुए मनन करते हैं। उनके हृदय में जीवन और जगत सम्बन्धी अनेक प्रश्न उठते हैं।[२] मनु इस मननावस्था में ब्रह्म यज्ञ की ओर संकेत करते हैं आगे वे देवतुष्टि हेतु अग्निहोत्र[३] तथा मैत्रावरुण यज्ञ[४] करते हैं। वे नये अन्न को आहुति देते हैं।[५] यह यज्ञ विराट सत्ता की तुष्टि हेतु किया गया है अतः यह देवयज्ञ है। मनु पाक-यज्ञ के अवशिष्ट अन्न को कुछ दूर रख देते हैं।[६] इसी अन्न को देख कर श्रद्धा मनु के पास आती है।[७] इस यज्ञ में भूत-यज्ञ की ओर संकेत हैं।

हिंसात्मक-यज्ञ का उल्लेख कामायनी में उस समय होता है जहाँ मनु आसुर पुरोहितों से सहयोग से पशु-बलि करते हैं।[८] मनु स्मृति में भी पशु-बलि का उल्लेख मिलता है।[९]

१—तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ॥
पंच लुप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृह मेधिनाम् ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥
हो मो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

मनुस्मृति, ३।६९-७०

२—कामायनी, पृ० ३३

३—वही, पृ० ३१

४—वही, पृ० ११४

५—कामायनी, पृ० ३२

६—वही, पृ० ३२

७—वही, पृ० ५२

८—कामायनी, पृ० ११४, ११६

९—मनुस्मृति, ४।४०

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक विकास से लिए सोलह संस्कारों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। मनुस्मृति में बतलाया गया है कि इन संस्कारों से च्युत रहने वाले व्यक्ति को समाज से बहिस्कृति कर दिया जाता था।[१] प्रसाद जी ने कामायनी में सम्पूर्ण संस्कारों को महत्व न देकर गर्भाधान, विवाह; वानप्रस्थ तथा संन्यास को सांकेतिक रूप से स्थान दिया है। गर्भाधान संस्कार का उल्लेख कामायनी के कर्म सर्ग में होता है जहाँ मनु और श्रद्धा का मिलन होता है।[२] विवाह संस्कार के अन्तर्गत मनु श्रद्धा का कर पकड़ते हुए[३] संधि-पत्र लिखते हैं।[४] मनु द्वारा कैलाश पर्वत देवस्तुति करना वानप्रस्थ की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार संन्यास के अन्तर्गत मनु श्रद्धा के साथ कैलाश पर्वत पर पहुँच कर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए, पर-सेवा में प्रमुख योग देते हुए दृष्टिगत होते हैं।

प्रसाद ने देव-स्वरूप को भी कामायनी में स्थान दिया है। वरुण अन्तरिक्ष में हलचल उत्पन्न करने वाले तथा मित्रवरुण रूप में आये हैं।[५] अथर्ववेद में मित्र का संबंध दिन से तथा रात्रि का संबंध वरुण से स्थापित किया है।[६] देवताओं में सब का रूप संहारकारी है। उस भूतनाथ से प्रकृति भी त्रस्त रहती है। उसका रोष भयंकर होता है।[७] ये युद्ध-भूमि में नाराच चलाते हुए दिखाई देते हैं। दर्शन सर्ग में नटराज के रूप में सामने आते हैं।[८] ऋग्वेद में रुद्र को

१—वही, २। ३९-४०

२—कामायनी पृ० २८२

३—कामायनी, पृ० ९२

४—वही, पृ० १०६

५—वही, पृ० १२८

६—कामायनी पृ० १४,११४

७—अथर्ववेद, ६। ३। १८, १३। ३। १३

८—कामायनी, पृ० २४१

९—वही, पृ० २०२

१०—वही, पृ० २५२

विशेष महत्व मिला है परन्तु अथर्ववेद और युजर्वेद में शिव ने भी महत्व प्राप्त कर लिया है। परवर्ती धर्मकाव्य में शिव रुद्र का ही एक रूप है।[1] कामायनी में इन्द्र का वर्णन वृत्त के बधिक के रूप में आया है। इसकी पुष्टि ऋग्वेद में मिलती है जहाँ बतलाया गया है कि इन्द्र ने वृत्त का वध करके प्रकाश, सूर्य और ऊषा को जन्म दिया था।[2]

इतर देव-देवियों में सविता का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में सविता से देवों के प्रति जो अपराध हुए हैं, उनके उद्धार के लिए आराधना करने का उल्लेख है।[3]

भारतीय परम्परा में आचार नीति धर्म का महत्वपूर्ण अंग रहा है। इस का संबंध मनुष्य के वैयक्तिक कर्त्तव्यों से होता है। इसमें सत्य को प्रमुखता दी गई है। शास्त्रों ने भी सत्य की महत्ता का गुण गान किया है—

सत्येन धर्म ते पृथ्वी सत्येन तपते रवि।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वे सत्य प्रतिष्ठितम्॥[4]

सत्य एक महान धर्म होने से प्राचीन ऋषियों ने उसका अन्वेषण करते हुए जीवन के लिए उसे आवश्यक बतलाया है। बुद्धि की तर्कशीलता द्वारा ही सत्य को पकड़ा जा सकता है। तर्क एक ऐसा बुद्धि वैभव है जो सत्य का पता लगा सकता है। प्रसाद ने कामायनी में सत्य की व्याख्या इस प्रकार की है—

"और सत्य ! यह एक शब्द तू
कितना गहन हुआ है;
मेधा के क्रीड़-पंजर का
पाला हुआ सुआ है।
सब बातों में खोज तुम्हारी
रट-सी लगी हुई है;

१—ऋग्वेद, १।११४।५

२—ऋग्वेद, ३।४६।३, १ ३२।४,६।३०।५, १।३२।१

३—ऋग्वेद, ५।५७।८

४—चाणक्य नीति, ५।१६

किन्तु स्पर्श से तर्क करों के
बनता 'छुई मुई' है । [1]"

धर्म और नीति के साथ-साथ प्रसाद ने भारतीय संस्कृति के परिपार्श्व में कामायनी में दर्शन का समावेश भी किया है। प्रसाद के प्रारम्भिक जीवन को देखने से विदित होता है कि वे शैवागमी थे अतः उन पर शैवमत का प्रभाव अधिक मात्रा में परिलक्षित होता है। उन्होंने शैवमत के कश्मीरी प्रत्यभिज्ञा दर्शन को अपनी कामायनी में स्थान दिया है। इस दर्शन के अन्तर्गत उन्होंने समरसतावाद, आनन्दवाद, नियतिवाद, आभासवाद, तथा स्वातन्त्रवाद को ग्रहण किया है तथा दूसरी ओर बौद्ध दर्शन से प्रभावित होकर उसके दुखःवाद, क्षणिकवाद और करुणावाद को स्थान दिया है। इन दोनों दर्शनों के अतिरिक्त गीता के कर्मवाद तथा न्यायवैशेषिकों के परमाणुवाद से भी वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके हैं।

प्रसाद प्रत्यभिज्ञादर्शन के अन्तर्गत इच्छा, ज्ञान और क्रिया का समन्वय बतलाते हुए उसकी परणति आनन्दवाद में बतलाते हैं, जहाँ इच्छा, ज्ञान और क्रिया मिल जाते हैं और सर्वत्र आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। [1]

नियतिवाद की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि ग्रहण करते हुए प्रसाद नियति के साथ कर्म को प्रधानता देते हैं। वे अकर्मण्यवादी नहीं बनना चाहते। उनका यह मत है कि कर्मयोग द्वारा ही पारस्परिक विषमताओं से मुक्ति मिल सकती है। नियति मानव पर नियामिका शक्ति होने से अपना शासन करती है—

कर्म-चक्र सा घूम रहा है
यह गोलक, बन नियति प्रेरणा ;
सबके पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा ।" [2]

योग वसिष्ठ में भी नियति को विराट् नृत्य करतो हुई सत्ता बतलाया गया है—

१— कामायनी, पृ० १११

२ - कामायनी, रहस्य सर्ग, पृ० २६२-२७३

३—वही, पृ० २६६

"नियति नित्यमुद्वेगवर्जिता परिमार्जिता ।
एषा नित्यति वे नृत्यं जगज्जालकनाटकम् ।।"[१]

नियति नियामिका शक्ति होती है अतः इसका एकान्त शासन प्राणीमात्र को मान्य होता है।[२] मानव प्रकृति कार्यों के लघु रूपों में कुछ परिवर्तन अवश्य कर सकता है परन्तु उसे बदल नहीं सकता।[3]

आभासवाद में प्रसाद सदैव शिव की सत्ता को प्राथमिकता प्रदान करते हैं।[४] इस सत्ता में प्रत्येक पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु उनका आधार प्रकाशवान है। इसमें जड़ और चेतन को उसी एक चित् सत्ता का रूप माना गया है। विश्व का मनोरम विकास इन्हीं पर निर्भर है। यह सत्ता स्वतन्त्र रूप से विश्व का उन्मीलन करती है—

"कर रही लीला मय आनन्द
महाचित सजग हुई-सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।"[५]

श्रीमद्भागवत गीता के इस श्लोक से उक्त कथन की पुष्टि हो जाती है—

इहै कस्यं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम दे हे गुडा केश यच्चान्मद् द्रष्टुमिच्छसि ।।"[६]

स्वातन्त्रवाद में ईश्वर की चित् सत्ता को स्वतन्त्र बतलाया है। यह सत्ता विश्व की सिद्धि के लिये स्वतन्त्र होकर अपना कार्य करती है और गतिशील काल इसमें अपना स्थान खोजता रहता है—

१—योगवासिष्ठ, प्रकरण, ६, सर्ग ३७, श्लोक २३
२ —कामायनी, आशा सर्ग, पृ० ३४
३—Kingsland', Rational' Mysticism, page 354
४—एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन, चिन्ता सर्ग, पृ० ३
५—कामायनी, पृ० ५३
६—श्रीमद्भागवत गीता, ११ । ७

"देश कल्पना काल परिधि में होती लय है,
काल खोजता महा चेतना में निज क्षय है।
वह अनन्त चेतन नचता है उन्मद गति से
तुम भी नाचो अपनी द्वयता में विस्मृति में ।।"[१]

प्रसाद बौद्ध-दर्शन के दुख:वाद से भी प्रभावित दृष्टिगत होते हैं। सर्वत्र संसार दुखमय है। इस दुखी वातावरण में दुख समुद्र का अपार नाद गूंज रहा है।[२] इस संसार का अस्तित्व क्षणिक है। ऐसी स्थिति में स्थायित्वता और लघुता का अनुमान करना मन की मिथ्या कल्पना है।[३] प्रसाद भी बौद्ध दर्शन के इस क्षणिकवाद से बच नहीं सके हैं। उन्होंने कामायनी में आनन्द जीवन का अस्तित्व विजली के क्षणिक प्रकाश के सदृश बतलाया है—

"जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
व्यस्त नील घन-माला में
सौदामिनी - संधि-सा सुन्दर
क्षणभर रहा उजाला में।"[४]

कामायनी में करुणा मुखर उठी है। श्रद्धा करुणा की मूर्ति है। वह इड़ा को जिसने अपने रूप सौन्दर्य से मनु को मोहित करके, उसका सुहाग छीना था, को दीन स्थिति में देखकर, उसके दुखों की समाप्ति के लिये अपने प्रिय पुत्र को दे देती है।[५]

इसके अतिरिक्त प्रसाद न्याय वैशेषिकों के परमाणुवाद के आधार पर सृष्टि विकास में परमाणुओं का सहयोग बतलाते हैं जहाँ मूल शक्ति जड़ अवस्था में चेतन की ओर आकर्षित होती है। ऐसी स्थिति में समस्त परमाणु सृष्टि रचना सक्रिय हो गये हैं—

१—कामायनी, संघर्ष सर्ग, पृ० १९३

२—कामायनी, पृ० ८

३—डॉ० रामानन्द तिवारी-भारतीय दर्शन परिचय, पृ० १३२

४—कामायनी, पृ० १९

५—वही, पृ० २४२

वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई
अपने आलस का त्याग किये,
परमाणुबाल सब दौड़ पड़े
जिसका सुनन्द अनुराग लिये।"[४]

कामायनी को इतिहास, समाज, राजनीति, धर्म, दर्शन, आदि सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर परखने से विदित होता है कि इस कृत्ति में प्रसाद ने भारतीय संस्कृति का दीप्त और उदार स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है और इस कार्य में वे पूर्ण सफल भी हुए हैं।

१—कामायनी, पृ० ७२

३

कामायनी में मनोवैज्ञानिक आधार

श्री राजीव रंजनसिंह

"काव्य संसार के प्रतिकवि की भावप्रधान मानसिक प्रतिक्रियाओं को श्रेय को प्रेय रूप देने वाली अभिव्यक्ति है।" बाबू गुलाबराय का उपर्युक्त कथन 'कामायनी' के लिए शतांश उपयुक्त है। 'प्रसाद जी' एक मानवीय कवि थे। उन्होंने जीवन को सम्पूर्ण आग्रह के साथ ग्रहण किया। मानव स्वभावतः सुख प्रेमी जीव है। सुख या आनन्द प्राप्ति के लिए दो मार्ग हैं, श्रेय और प्रेय। प्रेय मार्ग भौतिकता के निकट है और श्रेय आध्यात्म के। गृहस्थ-जीवन में सुख के सब स्थानों की उपभोग प्राप्ति और उपभोग प्रेय मार्ग है तथा त्याग, निग्रह एवं परम आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयास श्रेय मार्ग है। मनुष्य सर्वप्रथम शारीरिक सुख चाहता है। सुख की प्राप्ति के मार्ग में बाधायें उत्पन्न होने पर संघर्ष होता है। लोभ, वासना, कामना की वृद्धि होने पर मन चंचल होता है और चंचल मन श्रद्धाहीन हो जाता है। उसकी बुद्धि का ह्रास हो जाता है। परिणाम स्वरूप कलह पैदा होता है। अतः मन और बुद्धि को समरसता पर लाने में श्रद्धा सहायक होती है। मनुष्य अपने सुख के साथ परसुख के संबंध में भी सोचने लगता है। परम आनन्द शांति और प्रेम में है अतः वह अध्यात्म की ओर झुकता है।

'कामायनी' मनोवैज्ञानिक काव्य है। इसके सर्ग भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक हैं। "कामायनी" हिन्दी ही नहीं अपितु संसार का सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक महाकाव्य है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार "मनु या मनस्तत्व का विवेचन करने के लिए "कामायनी" का निर्माण हुआ। "जयशंकर प्रशाद"। वे पुनः कहते हैं "कामायनी" में चित्रित मनोविज्ञान

सुगठित एवं प्रौढ़ है। "कामायनी" के सर्गों का नामकरण स्थान, घटना या पात्र के आधार पर करने की जगह मानसिक वृत्तियों के आधार पर कर प्रसाद जी ने मानव-जीवन की प्रवृत्तियों का क्रम दिखाने की सफल चेष्टा की है।" चिंता आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, संघर्ष, स्वप्न आदि सर्गों के नाम मनोविज्ञान के आधार पर ही हैं और इनमें मानव-जीवन की आशा-निराशा, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, प्रेरणा एवं प्रवृत्ति के बड़े ही सजीव मनोवैज्ञानिक चित्रण हैं। कामायनी के "आमुख" से उन्होंने स्वतः स्वीकार किया है। कि "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है; तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है। × × × मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।" मनोवैज्ञानिक विश्लेषणानुसार मनु मन हैं। मन में चंचलता, उच्छृंखलता, वासना, अधिकार, लोभ आदि वृत्तियों का संकल्प-विकल्प होता रहता है। श्रद्धा का रूपक श्रद्धा यानी विश्वास उपयुक्त ही है। उसमें सेवा वृत्ति, समझौते की प्रवृत्ति होती है। श्रद्धा-भाव यदि सक्रिय रहे तो संसार श्रद्धावान् के सम्मुख झुकता ही है। इड़ा का रूपक बुद्धि है। बुद्धि में व्यवस्था की, शासन की, विज्ञान की वृत्ति होती है।

त्याग द्वारा श्रेय मार्ग का अनुसरण भारतीय साहित्य और दर्शन का लक्ष्य और उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। 'कामायनी" में भी दुखःवाद से आनन्द-वाद की ओर प्रेरित करते हुए "प्रसाद जी" ने इसी मार्ग को अपनाया है। मन हमेशा नाना प्रकार के विकारों से भरा रहता है। स्वार्थ, कामना के वश में होकर वह सदा-सुख एवं सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए भटकता रहता है, संघर्ष, हिंसा, अधिकार आदि अनेकानेक 'अकाण्ड ताण्डव' किया करता है। चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, लोभ, मोह, आनन्द आदि मनोविकारों के वशीभूत होकर वह चंचल हो जाता है। स्वार्थ और कामना जब उसे अनियंत्रित कर देता है, तब वह अधिकाधिक सुख की प्राप्ति के लिए पग-पग पर ठोकरें खाता है। यदि उसमें सन्तोष आ जाय, उसे सत्संग मिले और सद्बुद्धि जगजाय तो सुख या आनन्द प्राप्ति में कोई बाधा नहीं रह जाएगी। चंचल मन सौन्दर्य और सुख के

लोभ में पथ-भ्रष्ट हो जाता है, सरलता के बदले आडम्बर दिखाने लगता है और मृग-मारीचिका में फंस जाता है। श्रद्धा की अवतारणा कर प्रसाद जी ने मानव को समरस, प्रेमकला और परम आनन्द का मार्ग बताया है। नियंत्रण और आत्मनिरीक्षण करना महापुरुषों का गुण है। सद्बुद्धि और हृदय के सामंजस्य से ही मन को आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। बुद्धि और हृदय दो में से किसी एक का साथ छोड़ने पर मन अशांत हो जाएगा और विवेक-शून्य अथवा विश्वास रहित होकर पथ-भ्रष्ट हो जाएगा।

'कामायनी' में प्रसाद जी ने सर्गों का नाम मनोवृत्तियों के आधार पर रखा है। प्रथम सर्ग 'चिन्ता' है। भारतीय दार्शनिकों की तरह प्रसाद जी ने चिन्तन या मनन को मन का प्राथमिक व्यापार बताया है। चिन्ता में कर्म का अभाव- बुद्धि का ह्रास रहता है। मनु हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठकर प्रलयकारी लहरों का दृश्य देखते हुए अतीत के वैभव-विलास की चिंता कर रहे हैं। लक्ष्य की प्राप्ति न कर सकना, धन एवं ऐश्वर्य का अभाव यानी अभाव चिन्ता का मूल है। परिस्थिति और वातावरण भी मानव को चिन्तित बनाता है। प्रथम सर्ग में बाढ़ से प्रलय उत्पन्न हुआ जिसके लिए मनु चिन्तत है। चिन्ता या चेतना मन की प्रथम मौलिक वृत्ति है जो शीर्षक बनकर आई है।

चिन्ता के पश्चात् जीवन-विकास की प्रेरणा देने वाली दूसरी वृत्ति 'आशा' है। यह सुखात्मक और विकासोन्मुख वृत्ति है। प्रलय समाप्त होते ही प्रकृति में सर्वत्र नव-चेतना, ऊषा का स्वर्णिम प्रकाश जो आशा-सूचक है, फैल जाता है। मनु का अहंभाव जगता है। उसे जिज्ञासा होती है विराट सत्ता के प्रति तथा आभास मिलता है। किसी अन्य प्राणी के बचे होने का। उनकी अनादि वासना प्रकृति के वैभव को देखकर जाग्रत होती है। भारतीय ग्रंथों में इसे 'रतिभाव' कहा गया है और मैकडूगल ने अहंभाव और कुतूहल को द्वन्द्व की अभिलाषा' कहते हुए इसे मूल प्रवृत्ति बताया है।

तीसरा सर्ग 'श्रद्धा' है। श्रद्धा को प्रसाद जी ने जीवन का मूल तत्व बताया है। वह नारी प्रतीक के रूप में चित्रित है और 'कामायनी' की नायिका भी है। वह मनु को प्रेरित करती है, शक्ति-संचय और प्रवृत्ति का मार्ग बताती है।

"ग्रौर यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो, विजयी बनो, विश्व में गूँज रहा जय-गान।"

श्रद्धा का संबंध हृदय से है, उसे रागात्मिका वृत्ति एवं विश्वास कहा गया है। प्रसाद जी ने इसीसे उसे 'हृदय की ग्रनुकृति वाह्य उदार' बताया है।

"कौन हो तुम वसंत के दूत
विरस पतझड़ में ग्रति सुकुमार।
घन तिमिर में चपला की रेख
तपन में शीतल मंद बयार।"

इसके बाद श्रद्धा प्रगट होती है। वह हताश तपस्वी को प्रेरणा देती है। दुःख ग्रौर ग्रज्ञात जटिलताग्रों से डर कर तुम काम करने से डर रहे हो? भविष्य के बारे में सोचो! महाचिति सजग होकर लीलामय ग्रानन्द कर रही है।

"काम मंगल से मंडित श्रेय
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।"

दुःख चिरन्तन नहीं है। दुःख के बाद सुख का प्रभात ग्राएगा। परिवर्तन प्रकृति का नियम है ग्रतः—

"जिसे तुम समझे हो ग्रभिशाप,
जगत की ज्वालाग्रों का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत इसको जाग्रो भूल।"

श्रद्धा मनु को ग्रागामी उन्नति के लिये प्रेरणा देती हुई उतरोत्तर विकास की ग्राशा बाँधती है। निराशा, ग्रकर्मण्यता, जीवन के प्रति ग्रविश्वास, पलायनवादिता ग्रादि से उपर उठती है ग्रौर ग्राशा तथा विश्वास से कर्मण्यता की ग्रोर उन्मुख करती है।

'कामायनी' का चौथा सर्ग 'काम' है। काम जीवन का ग्रावश्यक ग्रंग है। इमसे 'भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। ऋग्वेद में इसे "रेतस" कहा गया है। वात्स्यायन ने काम को समस्त इन्द्रियों का प्रेरक बतलाया है। न्याय-दर्शन, गीता ग्रादि में काम का ग्रस्तित्व है ग्रौर प्रवृत्ति

मार्ग में आसक्ति, सृष्टि आदि में काम का बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। पाश्चात्य विद्वानों में फ्रायड, युंग, एडलर एवं मैकडूगल ने भी इसे मूल प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया है। फ्रायड ने तो इसे अत्यन्त व्यापक माना है। फ्रायड के इगो और लिबिडो मन की मूल प्रवृत्तियाँ हैं जो मानव-जीवन को अत्याधिक प्रेरित करते हैं। फ्रायड का मत है कि जब काम की प्रवृत्ति दबा दी जाती है तब वह स्वप्नों, भूलों, हास्य कला, धर्म और मानसिक उपद्रवों के रूप में प्रकट होती है। प्रसाद जी ने भी स्वप्नावस्था में काम उत्पन्न किया है। श्रद्धा मनु को प्रेरित करती है, आकर्षित करती है और प्रलोभन देती है और मनु को दबाती है पर स्वस्थ मनु के अचेतन मन यानी स्वप्नावस्था में वह जाग्रत हो ही जाता है। काम के वशीभूत मनु का चित्रण:—

पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ
यह स्पर्श, रूप, रस गंध भरा"

अथवा

"प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा,
संतुष्ट ओघ से मैं न हुआ"

काम और वासना एक दूसरे का पूरक है। अतः काम के बाद 'वासना' सर्ग है प्रसाद जी ने वासना की निन्दा करते हुए वासना निग्रह में ही जीवन का सुख निहित बताया है। आसक्ति और वासना की प्रबलता से रजोगुण उत्पन्न होता है जो ज्ञान को काम से आच्छादित कर देता है—ऐसा गीता में भी कहा गया है। "कामायनी" के 'वासना' सर्ग में मनु को इसी प्रबल वासना का शिकार बताया गया है। प्रसाद जी वासना के सात्विक रूप में मानव का कल्याण और आनन्द निहित मानते हैं। वासना का नियंत्रण सात्विक रूप है जो सृजनात्मक होता है और अनियंत्रित रूप रजोगुण' है जिससे भोग वृत्ति, स्वार्थ, अश्रद्धा, घृणा उत्पन्न होता है। मनु जीवन के वास्तविक लक्ष्य से इसी कारण विपथ में जाते हैं।

वासना के बाद 'लज्जा सर्ग आया है। लज्जा ही नारी का संयम, त्याग और समर्पण का पाठ सिखलाती है। नारी का स्वभाव होता है वह तुरन्त पुरुष पर विश्वास कर अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है। श्रद्धा का भी यही

हाल है पर मनु के अति विलासी हो जाने पर उसमें लज्जा का उदय होता है जो अति विलास में रुकावट डालती है। 'लज्जा' सर्ग कामायनी का अति मनोवैज्ञानिक वन पड़ा है। यह सर्ग सब दृष्टि से उत्कृष्ट है। लज्जा से कपोलों में लाली आती है जो सौन्दर्य को द्विगुणित करती है तथा वासना पर रोक डालती है। 'कामायनी' में लज्जा का वर्णन निम्न प्रकार है:—

"मैं उसी चपल की धात्री हूँ
गौरव महिमा हूँ सिखलाती
× × ×
मैं रात की प्रति कृति लज्जा हूँ
मैं शीलनता सिखलाती हूँ"

तथा

लाली वन सरस कपोलों में
आँखों में अंजन-सी लगती,
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।"

"कामायनी" का सातवाँ सर्ग 'कर्म' है। कर्म का अभिप्राय यहाँ याज्ञिक एवं हिंसात्मक कर्म से है। किलात और आकुलि मनु को हिंसात्मक कर्म की ओर प्रेरित करते हैं। वासना की अतृप्ति से हिंसा और ईर्ष्या आदि भाव का उदय होता है। हिंसा आसुरी प्रवृत्ति की द्योतक है जो गीता के तमोगुणी पुरुष का लक्षण है। उसमें मद और दम्भ बढ जाता है। आसुरी प्रवृत्ति की ओर प्रेरित होकर वह अपने सुख को ही सर्वस्व समझने लगता है—

'तुच्छ नहीं है अपना सुख भी
श्रद्धे। वह भी कुछ है,
दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है।

अतः इसमें मन के पतन की स्थिति का यथार्थ वर्णन है।

कर्म के उपरान्त "ईर्ष्या" सर्ग आता है जिसे हम अत्यधिक चाहते हैं यदि उसका प्यार बँटता है तो स्वार्थी मन स्वभावतः ईर्ष्या करने लगता है। मनु तो आत्म-केन्द्रित हो गया है। उसकी संकीर्णता ईर्ष्या की स्थिति में उससे अनेकानेक उपद्रव कराने लगती है। श्रद्धा का प्रेम गम्भीर है पर मनु को लगता है कि अब वह मुझे भूल कर तकली और अन्य जीव को प्यार करने लगी है। अतः वह शिकायत करता है—

"श्रद्धे ! तुमको कुछ कमी नहीं पर मैं तो देख रहा अभाव,
× × ×
वह व्याकुलता अब कहाँ रही जिसमें सब कुछ हो जाय भूल,
× × ×
तुम बीज बीनती क्यों मेरा ? मेरा मृगया का शिथिल हुआ न कर्म।"

चरम रूप धारण करती है—

"तिस पर यह पीलापन कैसा यह क्यों बुनने का श्रम सखेद ?
यह किसके लिये बताओ तो क्या इसमें है छिप रहा भेद ?"

पुनः

"यह जीवन का वरदान, मुझे दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिंता का तव चित्त वहन कर रहे भार।"

श्रद्धा मनु को गर्भस्थ शिशु के प्रति अपनी कल्पना सुनाती है। मनु पर इसकी प्रतिक्रिया होती है—

"तुम फूल उठोगी लतिका-सी कम्पित कर सुख-सौरभ-तरंग,
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा वन-वन बन कस्तूरी-कुरंग।
यह जलन नहीं सह सकता मैं चाहिये मुझे मेरा ममत्व,
इस पंचभूत की रचना में मैं रमण करूँ बन एक तत्व।"

इस अहंभाव के अतिरेक के कारण मनु मात्र अपने सुख, प्रेम, अधिकार की चिंता करता है।

'कामायनी' का नवाँ सर्ग 'इड़ा' है। ईर्ष्या के वशीभूत वह श्रद्धा को छोड़ कर इड़ा के पास यानी हृदय को छोड़कर बुद्धि के शरण में आया है। यह

मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब मनुष्य अपना प्यार, ममत्व और अधिकार बँटा हुआ देखता है तब उत्तेजित हो कर सुख-शांति की खोज में बुद्धि की ओर भागता है। जिसे हृदय नहीं मिलता वह तर्क का सहारा लेता है। सारस्वत प्रदेश में मनु ने शासन अपने हाथों में लेकर नव-निर्माण का जो कार्य किया है वह और कुछ नहीं आज का विज्ञानवादी या बुद्धिवादी चिंतन ही है। प्रसाद के अनुसार यह भौतिकवाद मानवता के विकास में बाधक है। शासन-सूत्र मनु के हाथ में आने पर वह इड़ा को अंकशायिनी बनाना चाहता है और (बुद्धि) उसके प्रति व्यभिचार करता है। इससे प्रकृति में विद्रोह उठता है जिसे देख कर मनु पुनः प्रलय की घटना याद कर डर जाते हैं।

इड़ा से बाद 'स्वप्न' 'संघर्ष' 'निर्वेद' 'दर्शन' 'रहस्य' सर्ग आते हैं। इन सर्गों में वैज्ञानिक उन्नति द्वारा ऐश्वर्य एव वैभव का चित्रण है साथ ही उसके भयावह परिणाम की ओर भी संकेत है। प्रजा विद्रोह करती है और इड़ा भी अधीनता स्वीकारने को तैयार नहीं है। यहाँ जन समूह के मनोवैज्ञानक का आभास मिलता है। मनु को अपने कार्यों पर ग्लानि होती है। उनमें विकर्षण भाव यानी घृणा, अरुचि आदि उत्पन्न होते हैं। जब कामना नहीं रह जाती, जीवन वैराग्य की ओर उन्मुख होता है तब उसमें तत्वज्ञान के प्रति आस्था जगती है। मनु अब शांत-चित्त होकर विभीषिकाओं के विषय में चिन्तन करते हुए त्रिपुर रहस्य के दर्शन करते हैं। इच्छा, क्रिया और ज्ञान के पृथक्-पृथक् रहने से जीवन में सारे संकट आते हैं और जब इनका समन्वय होता है तब आनन्द की प्राप्ति होती है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी ज्ञान, क्रिया और इच्छा को मन की प्रवृत्तियां मानते हैं और तीनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताते हैं।

'कामायनी' का अन्तिम सर्ग 'आनन्द' है। प्रसाद जी शैवदर्शन से अत्यधिक प्रभावित थे। अतः जीवन में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने "कामायनी" की सृष्टि की। गीता में कहा गया है कि जितेन्द्रिय, तत्पर एवं श्रद्धावान को ज्ञान एवम् परमशांति या परमानन्द की प्राप्ति होती है। 'कामायनी' में मनु को आनन्द की प्राप्ति उसी क्षण होती है जब वह श्रद्धायुक्त होकर इन्द्रिय निग्रह एवम् कामना का त्याग करता है। मन में जब समरसता

का संचार होता है, अपने-पराये की भावना मिट जाती है और 'विश्व-देव की सत्ता' का आभास होता है तब अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है। 'आनन्द' सर्ग में सब उस पावन जगत को प्रस्थान करते हैं जहाँ एक चिन्तित मानव के सारे ताप शांत हुए। जहाँ वसुधैव कुटुम्ब की भावना जगती है। इसका वर्णन इस प्रकार है—

"शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है समरस है जोकि जहाँ है।"

× × × ×

"चिति का विराट वपु मंगल यह सत्य सतत चिर सुन्दर"

× × × ×

"समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था"

भारतीय ग्रन्थों में मन का विवेचन कई तरह से किया गया है। यास्क ने मनु धातु से मन की व्युत्पत्ति बतायी है। गीता में मन को अति चंचल प्रकृति का, दृढ़ एवं शक्तिशाली बताया गया है। उपनिषदों में उसे कहीं ब्रह्म का पर्यायवाची बताया गया है, तो कही जानने, देखने, संकल्प करने वाला, धारण करने वाला बताया गया है। ऋग्वेद में उसे 'रेतस्' कहा गया है जिससे काम की उत्पत्ति होती है। न्याय दर्शन में मन को सुख-दुखादि का अनुभव करने वाला साधन माना गया है। इसका काम है संकल्प विकल्प करना। भारतीय मत और नियन्त्रण और त्याग पर अधिक बल देता है और इसी में मानव का कल्याण निहित मानता है। यदि मन नियन्त्रित नहीं होगा तो वह कामना के वश में होकर अति की ओर अग्रसर होता है और मानव का सारा जीवन अस्तव्यस्त कर देता है। अतः 'प्रसाद जी' कामायनी में श्रद्धा और बुद्धि द्वारा समरस यानी मध्यम मार्ग के अनुसरण का समर्थन करते हैं।

पाश्चात्य ग्रन्थों में मन के विषय में अत्यधिक विचार मिलते हैं। प्लेटो के अनुसार संसार में अच्छे-बुरे सब तरह के पदार्थ हैं। मन ही अच्छे बुरे का भेद बताता है और उसी के अनुसार मानव अग्रसर होता है। यह हमें विभिन्न ज्ञान का सिखाता है। अरस्तू मन तथा आत्मा को भिन्न बताते हुए मन में

विचार करने की शक्ति है ऐसा कहा है। किसी-किसी विचारक के अनुसार यह द्रव्य है। कुछ विचारक इसे प्रत्यय मानते हैं। फ्रायड तथा उनके शिष्य युंग एवं एडलर ने चेतन एवं अचेतन दो रूपों में स्वीकार किया है। इड, इगो, सुपर इगो लिबिडो आदि प्रवृतियों का विवेचन मनोविश्लेषण के क्रम में किया है। मन और शरीर का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः इसके अंगों पर भी काफी चिन्तन मिलता है। काम के सम्बन्ध में भी भारतीय तथा पाश्चात्य ग्रन्थों में काफी विवेचन हुआ है। फ्रायड ने तो काम को प्राणी की आदि प्रवृत्ति बताया है। उनके अनुसार काम जन्म के साथ ही उदित होता है और समलिंगी विषयलिंगी तथा oedipus complex के रूप में विवेचन किया है। मैकडूगल वासना को काम का संवेग बताते हैं। भारतीय ग्रन्थों में भी इसे जीवन का अत्यावश्यक अंग बताया गया है। काम प्रेम और सृष्टि दोनों का स्रष्टा है। यदि काम सात्विक रूप में रहता है तो इससे मानव तथा जगत का कल्याण होता है पर यदि रजोगुण से प्रभावित हुआ तो मानव विपथगामी हो जाता है। अतः भारतीय ग्रन्थों में संयम और नियंत्रण पर जोर दिया गया है।

'प्रसाद जी' का मन सम्बन्धी विवेचन भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों मतों से समता रखता है। चिन्ता, हर्ष, विषाद, क्रोध, लज्जा, वैराग्य, लोभ, मोह, आनन्द आदि मनोवृति एवं मनोविकारों का उन्होंने अपने काव्य में गहन विवेचन किया है। उनके अनुसार मन अति चंचल है, उसकी प्यास कभी नहीं बुझती, वह संकल्प-विकल्प करने वाला है तथा वह सदा सुख या आनन्द की ओर दौड़ता है। मन में लालसा, कामना, स्वार्थ, क्रोध. पलायनवादिता आदि भाव हैं जो चेतन-अचेतन अवस्थाओं में नाना प्रकार के विकारों में लीन रहता है। सद्बुद्धि, संतोष और सरलता उसे आनन्द की प्राप्ति कराता है। जहाँ तक काम का प्रश्न है, "प्रसादजी" संयमित और सात्विक काम को जीवन की मूल प्रवृत्ति मानते हैं। उनके अनुसार काम पर यदि नियंत्रण नहीं रखा जाय तो वह जीवन को कटु बना देता है। फ्रायड के स्वप्न-सिद्धान्त तथा 'कामायनी' के स्वप्न में समानता है। 'प्रसाद जी' का काम प्रेम का पर्यायवाची है। कामायनी में 'मूल-सिद्धान्त' श्रद्धा के पशु का वध, श्रद्धा का त्याग आदि रूप चिन्तित है जिससे मनु को अनेकानेक दुःख उठाने पड़े हैं।

अस्तु, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "कामायनी" का आधार मनोवैज्ञानिक व्यावहारिक अधिक है। जहाँ तक सैद्धान्तिक पक्ष का प्रश्न है वह 'प्रसादजी' की सूझ-बूझ और अध्ययन का द्योतक है। व्यक्ति विशेष के विचारों से समता हो सकती है, कुछ के विचारों से समता हो सकती है, कुछ के विचारों से समता भी आकस्मिक रूप से भी हो सकती है, पर मानव मन की विभिन्न प्रवृत्तियों, मनोविकारों, संकल्प-विकल्पों में समता पूर्णतः आकस्मिक नहीं कही जायेगी। 'कामायनी' में एक साथ भारतीय वेद, दर्शन और कामसूत्र के विचार तथा प्लेटो, अरस्तू, फ्रायड एवं मैकडूगल आदि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचारों से समता होने में उनकी सूझ एवं प्रतिभा का बड़ा हाथ है। भारतीय साहित्य का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। पाश्चात्य विचारों से भी उन्होंने किसी न किसी माध्यम से अवश्य सम्पर्क स्थापित किया होगा। 'कामायनी में मानव मन एवं मानवता के क्रमिक विकास का विस्तृत वर्णन करना 'प्रसादजी' का उद्देश्य था। अतः इसके मनोविज्ञान का प्रौढ़ होना भी स्वाभाविक ही है।

———

४

"कामायनी में मनोवृत्तियों की सजीव उद्भावना"

सु० श्री सावित्री परमार एम० ए०

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में महाकवि प्रसाद का उनके सर्वत्तोन्मुखी प्रतिभा के कारण प्रमुख स्थान है। काव्य-क्षेत्र में कामायनी की सृष्टि तो उनका एक प्रौढ़तर प्रयोग स्वीकार किया गया है। कारण कि सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए समाज के अन्तर्गत महाकाव्य की सृष्टि करना किसी भी महाकवि के लिए दुष्कर कार्य सिद्ध हो जाता है। क्योंकि वैज्ञानिक युग की नव-नव उद्भावनायें कल्पनाशील कवि के मानस को केन्द्रीभूत करने में असमर्थ हो जाती हैं। वह एक ऐसे जनसंकुल चौराहे पर अपने को खड़ा पाता है। जहाँ नाना प्रकार की प्रवृत्तियाँ, अभिरुचिया तथा सभ्यता के विचित्र सम्मिश्रण उसे देखने को मिलते हैं, ऐसी स्थिति मे वह अपने मानस से इस विषय पर समझौता करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता है कि इस नये युग में से किसे छोड़, और किसे चुने।

कवि प्रसाद का सबल व्यक्तित्व ही इस समस्या के हल में कामायनी के रूप में सफल रहा। कामायनी में कवि ने प्रागैतिहासिक काल के मानव इतिहास के बिखरे हुए मनकों को एक सूत्र में पिरोकर कथा का रूप दिया है। जिसमें खण्ड प्रलय के उपरान्त बिखरी हुई सृष्टि को मनु के द्वारा फिर से नवरूप का परिधान प्रस्तुत किया है। यह काव्य कथा की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि मानव-विकास के मनोवैज्ञानिक रूप को प्रस्तुत करने में सबल रहा है। प्रारम्भ से लेकर समाप्ति तक सारा काव्य मानव-विकास के उन सूक्ष्मतम् मानसिक उद्वेगों का सजीव चित्रण है, जिनका कि पुंजीभूत आज का बुद्धिवादी मानव-मस्तिष्क वर्तमान युग का परिचालन कर

रहा है। इस दृष्टि से कामायनी काव्य मनोवैज्ञानिक काव्य बन गया है। इस काव्य में कवि ने सर्गों का निर्माण ही कथा क्रम पर न रख कर उन-उन मनोवृत्तियों पर आधारित किया है जो-जो मानव को क्रमशः विकसित करने में सबल हुई हैं। उक्त विवेचन में हमने अपनी तर्कबुद्धि का ही अवलम्बन नहीं लिया है, स्वयं कवि ने कामायनी की भूमिका में इसका संकेत इस प्रकार से दिया है, "मनु श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपनी ऐतिहासिक आसित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

उक्त विवेचन के आधार पर अब हमें कामायनी का अनुशीलन इसी दृष्टि से करना है कि उसमें मनोवृत्तियों का चित्रण कवि ने किन-किन रूपों में प्रस्तुत किया है। कवि ने अपनो कथा-वस्तु का नायक मनु को चुना है, और यह मनु ही अपने एकाकी रूप में समस्त विकसित मानव सृष्टि का संकलित रूप है। जीवन के प्रथम क्षणों में व्यक्ति के हृदय में सर्व प्रथम एक ही मनोवृत्ति का उदय होता है और वह मनोवृत्ति है चिन्ता, क्योंकि अपने को सभी स्थलों पर एकाकी पाकर अपने निर्वाह के लिए चिन्तित हो उठना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। यहां तक कि मानव का लघुतम संस्करण नव शिशु जब अन्धकूप से निकल कर बाहर प्रकाश में आता है तो उसका रुदन भी इसी चिन्ता का ही प्रतीक है। न जाने अंधकूप मे उसका सजग मस्तिष्क किन-किन उद्भावनाओं में सघर्ष करता रहता है और जब वह इस नई दुनियाँ में आता है तो अपन को किंकर्तव्य विमूढ़ पाता है। कामायनी का मनु भी नव-शिशु की अवस्था से भिन्न नहीं है, जो प्रलय के वात्याचक्रों तथा व्योम का आलिंगन करने वाली समुद्र की लहरों के बीच में से एक टूटी-फूटी नौका का अवलम्बन लेकर प्रलय के प्रबल थपेड़ों को सहता हुआ उत्तर-गिरि के तट से टकरा जाता है। वह मनु जो अपने विगत वैभव के सुख-स्वप्नों में चूर था, वह आज देव जाति का विनाश पर हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर शिला की शीतल छाया में बैठकर मूक-रुदन करता हुआ अवसन्न है। कवि के शब्दों मे—

तरुण-तपस्वी सा वह बैठा, साधन करता सुर-श्मशान
नीचे प्रलय सिन्धु लहरों का, होता था सकरुण अवसान।

विगत का चिन्तन करते हुए मनु का स्वस्थ्य व्यक्तित्व किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। उसके अनुभूत सुख वर्त्तमान स्थिति में उसे नोंच-नोंच कर खाते हैं। मनु स्वयं कहते हैं—

"चिन्ता करता हूँ मैं जितनी, उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनन्त में बनती, जाती रेखायें दुख की,

निश्चय ही चिन्ता का उन्मेष मानव-जीवन में एक भयंकर अभिशाप होता है। इसके उदय होते ही मानव अपने संतुलन को खो बैठता है इसी मनोवृत्ति को कवि ने अनेक रूपों में चित्रित करते हुए कहा है।

"बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता, तेरे हैं कितने नाम,
अरी! पाप है तू जा, चल जा, यहाँ नहीं कुछ तेरा काम,"

चिन्ता की गहन क्षणों में व्यक्ति अपने को चेतना युक्त रखने की अपेक्षा अचेतन होने में ही जीवन की मुक्ति का अनुभव करता है। इसी तथ्य को मनु के शब्दों में कवि ने व्यक्त किया है—

"विस्मृति आ अवसाद घेर ले, नीरवते बस चुप करदे,
चेतनता चल जा जड़ता से, आज शून्य मेरा भर दे,

चिन्ता के उपरान्त मानव मनमें एक दूसरी मनोवृत्ति उद्‌भासित होती है, जो उसे संसार में जीने के लिए तथा कुछ कर्म करने के लिये प्रेरणा देती है, वह है आशा। निश्चय ही आशा का सम्बल चिन्ता सागर में डूबते हुए के लिए एक सबल सहारा होता है। इसी आशा-तन्तु पर गहन से गहन प्रहारों को सहकर भी मानव आगे का मार्ग प्रशस्त करता है, और अपने बिखरे हुए अवशेषों को फिर से समेट कर नव-निर्माण की ओर अग्रसर होता है। कवि प्रसाद ने कामायनी में प्रकृति के उपादानों से आशा का बड़ा ही सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रलय के उपरांत ऊषा की प्रथम किरणों से जो प्रकृति में नव-हास मुखरित होता है, वह चिन्तित जीवन में आशा का प्रतीक है—

वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हँसने फिरसे।
वर्षा बीती, हुआ सृष्टि में, शरद विकास नये सिर से।

मानव मन में इस मनोवृत्ति के उन्मेश के साथ ही क्षण-भर को दुःखमय अतीत विस्मृत हो जाता है, और सृष्टि का कण-कण नव-प्रेरणा बनकर आगे बढ़ने के लिए जैसे निमंत्रण दे उठता है। आशा के बलपर ही अतीत को छलना मानता हुआ मानव उस विभु की सत्ता के समक्ष नत्-मस्तक हो जाता है। जिसको इंगित पर यह सब कुछ हो रहा है। मनु के शब्दों में—

'हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम, यह मैं कैसे कह सकता,
कसे हो ! क्या हो ! इसका तो भार-विचार न सह सकता।"

आशा के पंख लगने पर व्यक्ति जीवन में थिरकने लगता है। उसे जीवन के प्रति फिर से एक मोह-सा उत्पन्न हो जाता है। कवि प्रसाद ने इसी आशा-वृत्ति का बड़ा ही सजीव मनोवैज्ञानिक चित्र इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है—

"यह क्या मधुर स्वप्न सी झिलमिल, सदय हृदय में अधिक अधीर
व्याकुलता-सी व्यक्त हो रही, आशा बन कर प्राण-समीर,"

इस आशा मनोवृत्ति के कारण ही मनु फिर से अपना अस्तित्व बनाये रखने को आतुर हो उठते हैं। वे कहते हैं—

"मैं हूं, यह वरदान सदृश्य क्यों, लगा गूंजने कानों में,
मैं भी कहने लगा 'मैं रहूँ' शाश्वत नभ के गानों में."

यह आशा ही थके-हारे तथा जीवन के सभी दांवों को खोये हुए जर्जरित व्यक्तियों की धमनियों में फिर से नव रक्त का संचार कर देती है, और वह अपनी उजड़ी हुई बस्ती को एक बार पुनः ललचाई दृष्टि से देखने लगता है। वही मनु जो अभी तक चिन्ता कातर थे, जिनकी हाड़ मांस-पेशियाँ चिन्ता के प्रबल थपेड़ों से सिथिल हो चुकी थीं, वे आशा के इंगित मात्र से फिर तरुण हो उठे—

"उठे स्वस्थ्य मनु ज्यों उठता है, क्षितिज बीच अरुणोदय कान्त,
लगे देखने लुब्ध नयन से, प्रकृति, विभूति, मनोहर शान्त,"

आशा मनोवृत्ति के उपरान्त संस्कार पोषित मानव मन में श्रद्धा के उस पुनीत भाव की सृष्टि होती है, जिससे कि वह अपने जीवन को किसी की

धरोहर मानकर चलता है और अपने को केवल मात्र एक कर्त्ता मानता है, नियामक नहीं। मानव-सभ्यता के प्रथम चरण में इसी मनोवृत्ति ने मानव का मानस उनपूत भावों से भरा, जिससे सृष्टि के कण-कण में उसे ईश-शक्ति का भान हुआ और उसके प्रति मधुर-भाव की भावनाओं का भी उद्बोध हुआ। यह वृत्ति ही मरु-मरीचिका में उद्भ्रांत व्यक्तियों के लिए सम्बल है। गहन-तपन के उपरान्त मलयज की शीतल बयार के समान है। मनु इस वृत्ति के उदय होते ही स्वस्थ्य व्यक्तित्व लेकर सृष्टि में अग्रसर होते हैं। काम गोत्रजा कामायनी से अपने जीवन का गहनतम सम्बन्ध जोड़ कर मानव सृष्टि के विकास में संलग्न हो जाते हैं। कवि ने इसी क्रम में 'काम'' प्रवृत्ति का बड़ा ही वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम आदि मानव के मन में "एकोऽहमश्याम" अर्थात् 'मैं रहूँ' की भावना जाग्रत होती है, किन्तु कालान्तर में उसका अकेलापन उसे "एकोऽहमवहुस्याम" में परिणित करके सृष्टिक्षा की प्रवृत्ति को जन्म देता है। इसी भावना के साथ काम का उदय मानव मन में होता है। प्रसाद जी ने स्वयं काम के मुख से कहलाया है—

"वह मूल शक्ति उठ खड़ी हुई, अपने आलस का त्याग किए,
परमाणु वाल सब दौड़ पड़े, जिसका सुन्दर अनुराग लिए"
......वह आकर्षण वह मिलन हुआ, प्रारम्भ माधुरी छाया में,
जिसको कहते सब सृष्टि बनी मतवाली अपनी माया में"

इस प्रवृत्ति के मन में पनपते ही प्रत्येक नाश और विश्लेषण भी संश्लिष्ट हुये से जान पड़ते हैं। प्रकृति का अणु-अणु मिलन की चाह में आकुलता दिखलाने लगता है। ध्यान रहे, कि यह काम जहां तक शुद्ध रूप में व्यक्ति के जीवन में आता है वहाँ तक तो स्वयं मानव का तथा उसकी सृष्टि का कल्याण ही करता है, किन्तु जब यह वासना के चंगुल में पड़कर धर्म-विरुद्ध रूप को ग्रहण करता है तभी अमंगलों की परम्परा जीवन में अभिशापित हो उठती है। सभव है काशी के प्रांगण में विखरे हुए वासना के उद्दाम दृश्यों को देखकर ही समस्त सृष्टि का दूषित स्वरूप कवि की आँखों में चित्रित हुआ हो और उसी की प्रेरणा से कवि ने कामायनी काव्य की सृष्टि की हो। काम

के दोनों रूपों को गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया है। वे कहते हैं कि—

"धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभः"

इसी क्रम में श्रीकृष्ण ने धर्म के विरुद्ध काम के भी दुष्परिणामों को व्यक्त किया है।

"कामत् संजायते मोहः मोहात्बुद्धि संभ्रमः"

महात्मा कबीर ने भी काम के शुद्ध स्वरूप पर कहा है—

"काम पिछाड़ें राम ने जो कोई जाने राख',

कामायनी का मनु इसी धर्म विरुद्ध काम के व्यामोह में फंसकर श्रद्धा को वासना के रूप में पंकिल कर देते हैं। श्रद्धा का उत्साहवर्धक संकेत उन्हें वासना के कर्दम में अविभूति कर देता है, और वे श्रद्धा से कह उठते हैं—

"कहा मनु ने, तुम्हें देखा अतिथि कितनी बार,
किन्तु इतने तो न थे तुम, दबे छवि के भार,
पूर्व जन्म कहूँ कि था, स्पृहणीय मधुर अतीत,
गूँजते जब मदिर घन में, वासना के गीत,"

इसी क्रम में कवि ने नारी के जन्म-जात लज्जा के मनोभाव का वह स्वाभाविक-सजीव चित्र प्रस्तुत किया है, जो आज तक देखने को कम ही मिलता है। नारी का सुकुमार व्यक्तित्व इस लज्जा भावना से सुरक्षित रहता है। श्रद्धा जब मनु को आत्मसमर्पण करने को समुत्सुक हो उठती है, तभी उसकी लज्जा मनोवृत्ति उसके अन्तर से प्रश्न करती है।

'इतना न चमत्कृत हो बाले, अपने मन का उपकार करो,
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती, ठहरो, कुछ-सोच विचार करो,"

लज्जा कामायनी को संकेत देती है कि जो सौन्दर्य नारी-चेतना का अनुपम प्रहरी रूप वरदान है, मैं उसे अक्षुण्य बनाए रखने वाली सजगता हूँ।

"मैं उसी चपल की धात्री हूँ, गौरव महिमा हूँ सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है, उसको धीरे से समझाती,"

कवि ने आगे चल करलज्जा के अनुभावों का भी बड़ा ही सजीव चित्र अंकित किया है—

"लाली बन सरस कपोलों में आँखों में अंजन-सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुंघराली, मन की मरोर बन कर जगती,"

नारी जीवन में लज्जा का भाव उसका अनन्यतम् आभूषण अवश्य होता है, परन्तु मन का किसी के प्रति झुकाव उस भाव को दवा डालता है, जिससे निराश लज्जा यह कर ही अपना अस्तित्व समेट लेती हैं :—

"क्या कहती हो ! ठहरो नारी, संकल्प अश्रु जल से अपने,
तुम दान कर चुकी पहले ही, जीवन के सोने से सपने,"

कवि ने श्रद्धामयी नारी के लज्जाभाव का सूक्ष्मतम् चित्रण करने के उपरान्त मानव के वासना दूषित मन का वह चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसमें कि ईर्ष्यामनोवृत्ति का प्रादुर्भाव होता है। वासना की मुग्धकारी मदिरा पीता हुआ मानव-सौन्दर्य की निश्चित सीमा में बँधने को आकुल नहीं रहता, अपितु उसे नव-नव आकर्षण श्रद्धा से विमुख करते हुए मृग तृष्णा में भटकने को सतत् आतुर कर देते हैं। मानव विकास का प्रतीक मनु भी श्रद्धा के सौन्दर्य में अब फीकापन अनुभव करने लगते हैं, और अब वे श्रद्धा को छोड़ कर बाहरी दुनियाँ में मृगया आदि खेलने में व्यस्त हो जाते हैं। कवि ने परिवर्तित होते मनु के मन का इस प्रकार से वर्णन किया है—

"जो कुछ मनु के करतल गत था, उसमें न रहा कुछ भी नवीन,
श्रद्धा का सरल विनोद नहीं, रुचता अब था बन रहा दीन,"

इतना ही नहीं, उन्हें गर्भवती श्रद्धा का व्यवहार एवं व्यापार भी अखरने लगा, जोकि वह आगुन्तक शिशु के लिए उपादान जुटाने में व्यस्त था। मनु की ईर्ष्या प्रखर होकर श्रद्धा से कह उठती है—

"यह द्वैत अरे यह द्विविधा तो, है प्रेम बांटने का प्रकार,
भिक्षुक मैं ना, यह कभी नहीं, मैं लौटा लूंगा निज विचार,"

मनु इस ज्वलनशील अन्तर को लेकर श्रद्धा विहीन हो कर निरीह नारी को उसी के भाग्य पर छोड़ कर चल देते हैं। वेचारी श्रद्धा कहती ही रह जाती है—

"रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही,—

परन्तु ईर्ष्यालु मनु अतृप्ति की ज्वरति अग्नि में, तृप्ति की आशा में भटकने को निकल ही गये।

कवि ने आगे चल कर अपने काव्य में बुद्धिवादी मानव का चित्रण प्रस्तुत किया है। आज का युग इसमें ज्वलन्त रूप लेकर साकार हो उठा है। मानव जब तक श्रद्धा से अनुशासित रहता है तब तक उसका जीवन सरल और स्निग्ध होता है, किन्तु ज्यों ही वह मन को अतिक्रमण करके बुद्धि के अनुशासन से शासित होता है, तब उसे संघर्ष उठाने पड़ते हैं। कवि ने इड़ा को बुद्धि के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। इड़ा के क्रम में उन्होंने आज की आधुनिका नारी का भी चित्रण किया है। आधुनिका शिक्षा से अनुशासित होकर केवल मात्र पुरुष की सहयोगिनी बनने तक की भावना रखती है, न कि उसकी अनुचरी। इसी का सजीव चित्र इड़ा के रूप में इस प्रकार से चित्रित किया गया है—

"बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल,
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम, शशि खण्ड सदृश्य था स्पष्ट भाल,
दो पद्म पलाश चषक से दृग, देते अनुराग विराग ढाल,

मनु तर्कमयी इड़ा के व्यामोह में घिर जाते हैं, और उसका सम्बल प्राप्त करने को अधीर हो उठते हैं—

"मैं तो आया हूँ देवि बतादो जीवन का क्या सहज मोल
भव के भविष्य का द्वार खोल!"

आज के बुद्धिजीवी विकसित मानव का मनु के रूप न बड़ा ही स्वाभाविक चित्र कवि द्वारा चित्रित हुआ है। जिस प्रकार से आज का विकासमान मानव बुद्धि के बल पर प्रकृति के सभी रहस्यों को खोलता हुआ जल, थल, पवन, गगन आदि पर विजय पाकर अति बुद्धिवाद क चगुल मे फँसकर अपने ही विनाश के कारण प्रस्तुत करता जा रहा है, ठीक इसी प्रकार से इड़ा की प्रेरणा से मनु भी उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश को नये-नये साधनों से युक्त करके फिर से बसा देते हैं, परन्तु उन्हें सब कुछ करने पर भी अपने मन में एक गहरा असन्तोष ही सदैव परिलक्षित होता रहता है। उनके मन में संस्कार-जन्य पुरुषत्व का अहं इड़ा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने को उद्दीप्त होता

रहता है। इड़ा के इस प्रश्न पर कि अब तो सब कुछ सुलझ चुका है, अब शेष करने को क्या रहा है ! इस पर मनु के मूकभाव मुखरित हो उठते हैं—

"इड़े ! मुझे वह वस्तु चाहिये जो मैं चाहूँ,
तुम पर हो अधिकार, प्रजापति न तो वृथा हूँ।"

इड़ा इसके उत्तर में इतना ही कहती है—

"मनु सब शासन स्वत्व तुम्हारा सतत निबाहें,
तुष्टि चेतनता का क्षण अपना अन्य न चाहें,
आह प्रजापति यह न हुआ है कभी न होगा,
निर्बाधित अधिकार आज तक किसने भोगा ?"

परन्तु मन पर इड़ा के सुन्दर तथा सरल वाक्यों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है, और वे बलात् इड़ा पर अपना पूर्ण अधिकार पाने को कटिबद्ध हो उठते हैं। इसी के परिणाम स्वरूप मनु को सारस्वत प्रदेश की प्रजा से संघर्ष करना पड़ता है। उन्हें आश्चर्य होता है कि जिस प्रजा को मैंने बोलना सिखाया, जिनके लिए विज्ञान के नए-नए आविष्कार आलोकित कर उनका श्रम सरल किया, वे ही आज इस रूप में मेरे समक्ष उग्र बन रहे हैं—

"तुम्हें तृप्ति-कर सुख के साधन सकल बताया,
मैंने ही श्रम भाग किया फिर वर्ग बनाया,
....

आज न पशु हैं हम, या गूँगे काननचारी,
यह उपकृति क्या भूल गये, तुम आज हमारी"

मनु के इस प्रश्न के उत्तर में विज्ञान के बोझ से दबे हुये तथा संघर्षमय जीवन के भार से आकुल जन-समुदाय उल्टा मनु से प्रश्न कर बैठा—

"वे बोले सक्रोध मानसिक भीषण दुख से,
देखो पाप पुकार उठा अपने ही मुख से—
तुमने योगक्षेम से अधिक संचय वाला,
लोभ सिखा कर इस विचार संकट में डाला,
हम संवेदन शील हो चले, यही मिला सुख,
कष्ट समझने लगे बना कर निज कृत्रिम दुख,"

जनता के स्वर के इस रूप में कवि ने आज के अशान्त मानव की मनोवृत्तियों का सजीव चित्रण किया है। इस प्रसंग को देखकर कवि का भविष्य द्रष्टा रूप साकार हो उठा है। आज जो कुछ विज्ञान की प्रगति में हो रहा है, विश्वाकाश में जो भयंकर युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं, उनकी कल्पना कवि ने तीस वर्ष पूर्व ही करली थी। संघर्ष सर्ग एक दृष्टि से काव्य का चर्मोत्कर्ष है। जहां आकर मानव का अति बुद्धिवाद अपने कुकृत्यों की परम्परा छोड़ता हुआ दृष्टिगत होता है।

कवि ने अवचेतन मन में उठने वाली मनोवृत्तियों को स्वप्न सर्ग उद्भासित कर स्वप्न के मनोविज्ञान का भी परिचय दिया है। यह स्वप्न, दया, माया, ममता से परिपूर्ण प्रोषिता श्रद्धा की निद्रा में उदय होता है। उसे मनु का संघर्ष स्वप्न में साकार हो उठता है, और वह श्रद्धामयी अपने आराध्य को पाने के लिए आकुल बन निकल पड़ती है।

मानव मन जब अत्यधिक प्रिय द्वारा छला जाता है तो उसके मन में उस मनोवृत्ति का उदयन होता है, जिसे 'निर्वेद' कहते हैं। इसके भान होने पर संसार के भौतिक सुख नगण्य बन जाते हैं, और आध्यात्मिकता की ओर व्यक्ति अग्रसर हो उठता है। राजा भर्तृहरि को भी अपनी परमप्रिय रानी पिंगला से ठगे जाने पर इसी प्रकार का निर्वेद हुआ था, जिससे उन्होंने सदा को वैराग्य ले लिया। आज का तटस्थ मानव की बुद्धि का धरातल उस समय की प्रतीक्षा में है जबकि इन परमाणु अस्त्रों के प्रयोग से सृष्टि नष्ट प्रायः हो जायगी, तब बचा शेष मानव फिर से अपना जीवन श्रद्धा के चरणों में समर्पित कर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होगा।

मनु भी आत्मग्लानि से प्रताणित होकर तथा सघर्षों से जर्जरित होकर मूर्छित हो जाते हैं, उनकी इस मूर्छित अवस्था पर ही श्रद्धा का आगमन होता है, जिसके स्पर्श मात्र से तथा मधुर सगीत भरे स्वरों से उनका मानस चेतनता लेते हुए फिर से प्रबुद्ध हो उठता है, उन्हें अब यह समस्त विश्व अकिंचन तथा घृणास्पद-सा लगने लगता है। वे श्रद्धा से कह उठते हैं—

"जल पीकर कुछ स्वस्थ हुए से, लगे बहुत धीरे कहने,
ले चल इस छाया के बाहर, मुझको दे न यहाँ रहने।"

मनु के मन पर निर्वेद इतना गहरा छा गया था, कि श्रद्धा का साहचर्य भी उन्हें फिर लुभा न सका। उन्हें सासांरिक जीवन, इसके प्रलोभन सब कुछ फीके से तुच्छ तथा सारहीन दिखाई देने लगे। उनके मन का ऊहापोह बढ़ता ही गया, और वे कह उठे—

"सोच रहे थे, जीवन सुख है ?
ना, यह विकट पहेली है-
भाग अरे मनु ! इन्द्रजाल से-
कितनी व्यथा न झेली है ?"

परिणाम स्वरूप मनु आत्मिक शान्ति पाने के लिए तथा उस सत्ता के दर्शन पाने के लिए निमित्त निकल पड़ते हैं, जिसकी कि माया समस्त धरासृष्टि को नव-नव खेल खिलाकर मुग्ध करती रहती है।

मनु के निर्वेद के साथ ही मानव सृष्टि के विकास तथा पतन का संकेत मिल जाता है। कवि ने आज बुद्धिजीवी संघर्षों से जूझते हुए मानव के लिए सामन्जस्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है। साम्यवाद हो जन-जीवन का सही हल है। इसी के लिए कवि ने मनु के पुत्र 'मानव' को नई सृष्टि का अग्रदूत बनाया है तथा अति बुद्धिवाद की भी अवहेलना श्रद्धा के शब्दों में इस प्रकार से की है—

"सिर चढ़ी रही पाया न हृदय,
तू विकल कर रही है अभिनय;
अपनापन चेतन का सुखमय,
खो गया, नहीं आलोक उदय;"

उपरान्त में श्रद्धा अपने सुकुमार मानव शिशु को इड़ा के हाथ में सौंपती हुई बुद्धि और हृदय का समन्वय करती हुई कहती है—

"हे सौम्य ! इड़ा का शुचि दुलार,
हर लेगा तेरा व्यथा भार;
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय
तू मननशील कर कर्म अभय,

इसका तू सब संताप निचय,
हर ले, हो मानव भाग्य उदय ;
सबकी समरसता कर प्रचार,
मेरे सुत ! सुन माँ की पुकार,"

कवि नें सभ्यता के विकसित स्वरूप और उसके भीषण दुष्परिणामों का चित्रण करते हुए मानव के रूप में एक नये अध्याय की सृष्टि की है। उनका संकेत है कि निरे बुद्धिवाद के सहारे सृष्टि का वही हाल होगा जो मनु तथा उसके सारस्वत प्रदेश का हुआ। आगे आने वाला मानव बुद्धि का साहस लेकर हृदय पक्ष से अनुशासित होकर ही राष्ट्र की नीति को सही रूप दें, इसी में व्यक्ति तथा विश्व का मंगल निहित है। इसके उपरान्त कवि ने अपनी कथा के नायक मनु को फिर से श्रद्धा से मिलाया है। श्रद्धा का सम्बल लेकर निर्द्वन्द्व मनु आध्यात्मिक शान्ति के लिए पुनः जुट जाते हैं, और उन्हें हिमालय की उच्चतम भूमि पर नर्त्तित नरेश की एक छाया-सी दृष्टिगत होती हैं, जिसे देखकर मनु का अंतःकरण भावों से उद्वेलित हो उठता है, और वे अपनी श्रद्धा से सहारा माँगते हुए कह उठते हैं—

"देखा मनु ने नर्त्तित नरेश,
हतचेत पुकार उठे विशेष—
"यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक, वे निज सम्बल,
सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल,
मिटते असत्य से ज्ञान लेश,
समरस अखंड आनन्द वेश।"

कवि प्रसाद ने कामायनी के रहस्य सर्ग में आकर उन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है, जिनके कारण यह सारा विश्व आनन्द पाने की लालसा में दौड़ता हुआ भी उसी प्रकार से छला जाता है, जिस प्रकार से मरुमरीचिकाओं से मुग्ध मृग छला जाता है। एक प्रकार से इस सर्ग में आकर कवि ने मानव मन की उन सभी गुत्थियों को सुलझाकर आनन्द के उस रहस्य को खोला

है, जिसके लिए कोई तत्व-ज्ञान की खोज में अध्ययन करता रहता है तो कोई कर्मवाद की चक्की में पिसता रहता है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो नाना प्रकार की अभिलाषाओं को अपने मन में संजोकर भी उद्विग्न रहते हैं। इन सबका बड़ा ही सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से यदि इस सर्ग को काव्य का आत्मपक्ष कहा जाये, तो अतियुक्ति न होगी।

श्रद्धा का सम्बल लिये हुये मनु हिमालय के उत्तुंग शिखर की ओर बढ़ते ही चले जाते हैं, किन्तु छोर हस्तगत नहीं होता। साधना से श्रमित मनु फिर से निराश हो उठते हैं, किन्तु श्रद्धा का दृढ़ अवलम्ब उन्हें मार्ग भ्रमित कर लौटने नहीं देता है। थके-हारे मनु को सहारा देती हुई श्रद्धा कहती है—

"हम बढ़ दूर निकल आये अब,
करने का अवसर न ठिठोली।"

आगे चलकर मनु को नीलाकाश में तीन आलोक बिन्दु दृष्टिगत होते हैं। इन ज्योति पुंजों को देखकर मनु का समुत्सुक मनु श्रद्धा से पूछ बैठता है—

"मनु ने पूछा, "कौन नये ग्रह—
ये हैं, श्रद्धे! मुझे बताओ;
मैं किस लोक बीच पहुँचा, इस—
इन्द्रजाल से मुझे बचाओ।"

श्रद्धा क्रमशः उन तीनों बिन्दुओं के रहस्य को स्पष्ट करती हुई इच्छा लोक का वर्णन करती है। वह बताती है कि यह जो लाल नक्षत्र लक्षित होता है, यह इच्छा लोक का प्रतीक है। इस लोक में सभी वर्ग नाना प्रकार की कामनाओं से परिचालित होते है। पाँचों कर्मेन्द्रियाँ अपनी-अपनी तृप्ति के लिए नये-नये मुग्धकारी आकर्षणों की ओर खींचती रहती हैं। जीवन की यह वह मध्य-भूमि है, जहाँ पर व्यक्ति अपने हृदय में भावनाओं का संसार रचकर उसे साकार करने के लिए लालायित रहता है—

"यह जीवन की मध्य भूमि है,
रस धारा से सिंचित होती,
मधुर लालसा की लहरों से—
यह प्रवाहिका स्पंदित होती।"

मानव जीवन की इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि वह जो कुछ अपने हृदय में भावनाओं का समूह संकलित करता है। वह नियम तथा उपनियमों के कारण आकाश में कुसुम रचना की भाँति अकल्पित हो उठता है—

"नियम सभी उलझन लतिका का,
भाव विटपि से आकर मिलना—
जीवन वन की बनी समस्या,
आशा नभ कुसुमों का खिलना।"

व्यक्ति के आगामी जीवन के सभी संस्कार पापमय या पुण्यमय इस मध्य-भूमि में ही पलकर पुष्पित होते हैं। मनु इच्छालोक के रहस्य को समझकर श्याम वर्णी नक्षत्र के रहस्य के प्रति जिज्ञासु हो उठते हैं। श्रद्धा मनु को समझाती है कि यह श्यामदेश कर्मलोक है। इसका रंग काला इस कारण है कि आजतक कोई भी इस निश्चिय पर दृढ़ मत नहीं हो सका है कि कौन कर्म अति श्रेष्ठ है, तथा कौन अति निकृष्ट। गीता में भी श्री कृष्ण ने कर्मयोग की मीमांसा करते समय अर्जुन को कहा है—

"किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र विमोहिता"

यह कर्म लोक वह लोक है, जहाँ व्यक्ति कार्यों के चक्र में पिसता रहता है। वह अपने एक कार्य को पूर्ण नहीं कर पाता है कि एक दूसरी इच्छा उसके मानसिक जगत को नई इच्छा की ओर अग्रसर कर देती है। इस लोक में आकर इच्छा लोक के सभी भाव भू लुण्ठित हो जाते हैं, जिस प्रकार से छात्रजीवन में शिक्षार्थी अपने जीवन में कितना महत्वाकांक्षाओं को पनपाते हैं, परन्तु क्रियात्मक जीवन में आने पर उनके सभी स्वप्न तिरोहित हो उठते हैं, केवल मिलता है उन्हें कर्ममय संघर्ष तथा जीवन के प्रति नैराश्य। इस लोक में कर्मों की वह लिपि मानव भाग्य में अंकित होती है जो जन्मजन्मांतर तक कर्मों का फल भोगने को बाध्य कर देती है। कर्म वह धातु है जो अन्य धातुओं की भांति किसी भी ताप से गल नहीं पाती।

कर्मलोक के इस कोलाहलमय तथा संघर्षमय एवं निराशयपूर्ण जीवन को देखकर मनु का ध्यान श्वेत-गोलक की ओर आकर्षित होता है। श्रद्धा कहती

है कि यह नक्षत्र ज्ञानलोक है। इसमें प्रायः वे व्यक्ति हैं जो ज्ञान की सतत आराधना में ही पूरा जीवन ध्यानस्थ कर देते हैं, यहाँ तक कि उनके केश-कलाप भी इस लोक की श्वेत छाया में लीन होकर एक रंग हो जाते हैं; इनके जीवन की भी विचित्र विडम्वना है। इन ज्ञानियों की दशा उन तटों के समान है जो लहरों को सहारा देते हुए भी उन्हें अपने में आत्मसात न कर निरासक्त रहते हैं। ये पद-पद पर संसार को आतंकित करने के लिए शास्त्रों की दुहाई देकर अपने को बचाते रहते हैं। कहने का अर्थ है कि इनके पास स्वयं का कुछ भी नहीं होता है। इन पर जब कोई आक्षेप करता है तो शास्त्र रूपी शस्त्र का प्रयोग करके ही अपनी रक्षा कर लेते हैं। कवि ने इन ज्ञानियों की विडम्बना पर बड़ा ही करारा व्यङ्ग किया है—

"यहाँ प्राप्य मिलता है केवल,
तृप्ति नहीं, कर भेद बांटती—
बुद्धि, विभूति सकल सिकता सी,
प्यास लगी है ओस चाटती।"

इतना ही नहीं कवि ने इन्हें उन मधुमक्खियों से सम्बन्धित किया है जो शहद एकत्रित करने में ही अपने जीवन की सार्थकता अनुभव करती हैं—

"उत्तमता इनका निजस्व है, अम्बुज वाले सर सा देखो,
जीवन मधु एकत्रित कर रहीं, उन ममाखियों सा बस लेखो,"

अंत में श्रद्धा के द्वारा कवि ने इस रहस्य का उद्घाटन कराया है कि मानव सदा से ही अपने मन की इच्छाएँ कुछ और पालता आया है तथा कर्म उससे नितान्त भिन्न करता है, एवं अपने संचित ज्ञान को इन दोनों से भिन्न रखता है। ऐसी अवस्था में भावलोक में बनी हुई कामना कराहने के अतिरिक्त कभी भी सफल नहीं हो सकती। जब तक मानव इन तीनों का सुन्दर समन्वय नहीं करेगा तब तक आनन्द की परितृप्ति उसके जीवन में सम्भव नहीं—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।

अन्त में श्रद्धा की स्मिति के साथ-साथ तीनों नक्षत्र-गोलक एकाकार हो जाते हैं, और मनु के जीवन में इस अहर्निश आनन्द की सृष्टि होती है जो अनिर्वचनीय है। इस आनन्द की उपलब्धि के उपरान्त मनु का हृदय भेदभाव की क्षुद्र भावनाओं से पृथक् होकर उस विशाल विराटता का अनुभव करता है जहाँ सब अपने ही दिखाई देते हैं, दूसरे नहीं। इस प्रकार से कवि प्रसाद ने रहस्य में आकर आनन्द की वह पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की है, जिसे पाने के लिए व्यक्ति अनेकों मतों, मतान्तरों, धर्मों एवं सम्प्रदायों के वात्याचक्र में पड़कर भी उसकी सच्ची उपलब्धि नहीं कर पाता।

अस्तु ! निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कामायनी काव्य में कवि ने आदि से लेकर अन्त तक उन मनोवृत्तियों का पूर्ण परिशीलन किया है, जिससे मानव अनुशासित होता हुआ जीवन-संग्राम में अग्रसर होता है। ये विभिन्न मनोवृत्तियां ही उसे जीवन का उत्थान एवं पतन समय-समय पर दिखाती हुई उसे कर्मपथ में बढ़ाती रहती हैं। इसी क्रम में आदि मानव का क्रमिक विकास प्रस्तुत करते हुए कथा के अनेक मोड़ों से वर्तमान मानव को संघर्ष की विभीषिकाओं का स्वरूपांकन कराके उस परमानन्द की ओर प्रेरित किया है जिसे पाकर ही मानव जीवन की सार्थकता है। इस प्रकार श्रीजयशंकर प्रसाद ने कामायनी द्वारा मानव के चेतन व अवचेतन भावनाओं की बड़ी ही सारगर्भित व्याख्या की है।

कामायनी की रूपक-कल्पना

श्री नन्दकुमार राय

कामायनी की रूपक-कल्पना पर विचार करते समय सबसे पहले हमारे समक्ष दो प्रश्न यूँ उठते हैं कि—

(क) रूपक क्या है तथा काव्य में उसका क्या महत्व तथा अभिनय है ?

(ख) कामायनी में रूपक-कल्पना का अस्तित्व किस अंश में वर्तमान है ?

'रूपक' शब्द का प्रयोग, साहित्य-शास्त्र में दो अर्थ-रूपों में किया जाता है। एक तो समस्त दृश्य-काव्य इस नाम से अभिहित किया जाता है ; और दूसरे (साम्यमूलक) अलंकार को भी रूपक कहते हैं, जिसमें उपमेय और उपमान अथवा प्रस्तुत और अप्रस्तुत का अभेद आरोप स्थापित किया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी के 'पद्मावत' पर विचार करने के प्रसंग में रूपक को प्रकारान्तर से 'अन्योक्ति' के रूप में ग्रहण किया है। कारण अन्योक्ति (अन्य+उक्ति) अर्थात् इसका भी अर्थ है, प्रस्तुत के द्वारा अप्रस्तुत को ज्ञापित करना। अद्यतन साहित्य में संस्कृत अथवा हिन्दी का 'रूपक' शब्द अंग्रेजी के 'ऐलिगरी' के वजन पर व्यवहृत किया जाने लगा है और इसका भी वही अर्थ द्योतित हो रहा है, जो अंग्रेजी का 'एलिगरी' शब्द बोध कराता है। 'ऐलिगरी' ऐसा कथात्मक रूपक है, जिसमें एक कथा को दूसरे कथा-आवरण में छिपाकर प्रस्तुत करते हैं। अतः दूसरी कथा स्वभावतः, द्वयार्थक हुआ करती है। इसकी घटनाओं में प्रतीकात्मकता होती है तथा पात्र मानवीकृत अथवा 'टाइप' रूप में प्रत्यक्ष होते हैं। इसमे व्यक्त प्रस्तुत तथा स्थूलता-

प्रधान तथा भौतिक घटनामयी होती है; जबकि अप्रस्तुत कथा में सैद्धान्तिक सूक्ष्मता रहती है। इसमें भावों, विचारों, मनोवृत्तियों, अशरीरी वस्तुओं आदि को मानवीकरण अथवा अन्य पद्धति द्वारा कथा का पात्र निर्मित किया जाता है। अतः यह सैद्धान्तिक कथा निश्चिय ही सिद्धांतपरक दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा मनोवैज्ञानिक आदि प्रकार में से किसी विशिष्ट प्रकार की होती है, पर इसमें मूर्त्तता नहीं होती। प्रकारान्तर से यूँ कहें कि प्रस्तुत कथा अपनी समग्रता मे शरीर का काम करती है, जो प्रत्यक्ष होती है तथा अप्रस्तत कथा ही वास्तव में आत्मा का काम करती है, जिसे व्यक्त करना कथाकार अथवा काव्यकार को अभीष्ठ होता है। कथात्मक रूपक में जो कथा प्रस्तुत होती है, वस्तुतः वही अपनी इत्तिवृत्तात्मकता में सही नहीं होती, प्रत्युत् उसके परे भी उसका गूढ़ार्थ अपना अस्तित्व रखता है, जिसका प्रतिपादन तथा अभिव्यञ्जन करना कथाकार का अन्तिम लक्ष्य होता है। जहाँ पर गूढ़ार्थ की व्यञ्जना होती है अथवा व्यञ्जना होती है अथवा व्यञ्जना का विधान होता है, वहाँ कथाकार को कथा में प्रभावात्मकता लाने के लिए कई पठारों से होकर गुजरना पड़ता है। प्रस्तुत को छिपाकर अप्रस्तुत को प्रत्यक्ष करने के लिए कतिपय पद्धतियों और माध्यमों का सहारा लेना पड़ता है, जैसे मानवीकरण, प्रतीक आदि। इन्हीं साधनों के सहारे अप्रस्तुत का विधान किया जाता है।

यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब रूपक के विधान में इतनी पेचीदगी है तो फिर इसकी आवश्यकता क्या है? काव्य के क्षेत्र में रूपक को जहाँ हम अलंकार के रूप में ग्रहण करते हैं, वहाँ स्पष्टतः व्यंग्य अर्थात् अर्थ की व्यंजना अथवा कथ्य का द्योतन होता है। शब्द की जिन तीन शक्तियों की तीन कल्पना हमारे प्राचीन आचार्यों ने की है, 'व्यंजना' उनमें अन्तिम होते हुए भी वैशिष्ट्य की दृष्टि से प्रमुख स्थान की अधिकारिणी ठहरती है। इसके सहारे अर्थ अर्थात् कथ्य का ठीक-ठीक ग्रहण तो होता ही है, उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके वजह से प्रभावान्विति (Effect of Totaliry) में भी वृद्धि होती है—और यही अन्तिम साध्य होता है। अतः स्पष्ट है कि रूपात्मकता, चाहे वह काव्य की हो तो अथवा कथा की हो तो, हर रूप में प्रभाव को वृद्धि करने में सहायक होने से ग्राह्य सिद्ध होती है।

अब हम प्रश्न के दूसरे हिस्से अर्थात् 'कामायनी की रूपकात्मक कल्पना' पर विचार करें :

इस प्रश्न पर विचार करने के लिए सबसे पहले इस बात पर गौर करना अनिवार्य हो जाता है कि क्या कामायनी की कथा में प्रस्तुत अर्थ के साथ किसी सैद्धान्तिक, दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक आदि में से किसी विशेष प्रकार के अप्रस्तुत अर्थ की भी व्यंजना होती है ? कामायनीकार ने कामायनी के 'आमुख' में यूँ दिया है।

"आर्य-साहित्य में मानवों के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदों से लेकर पुराण और इतिहासों में बिखरा हुआ मिलता है। श्रद्धा और मनु के सहयोग से मानवता के विकास की कथा को, रूपक के आवरण में, चाहे पिछले काल में मान लेने का वैसा ही प्रयत्न हुआ हो जैसाकि सभी वैदिक इतिहासों के साथ निरुक्त के द्वारा किया गया, किन्तु मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गयी है। इसलिए वैवस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुष ही मानना उचित है।"

× × ×

यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।"

"यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष, हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।.........इन्हीं सबके आधार पर कामायनी की कथा सृष्टि हुई है।

ऊपर के उपकरणों से स्पष्टतः मालूम होता है कि कामायनी को प्रसाद जी ने मूलतः एक ऐतिहासिक काव्य के रूप में लिखा है; परन्तु इसकी कथा में रूपात्मक कल्पना के सहारे सांकेतिक अर्थ-द्योतन से कामायनीकार को कोई आपत्ति नहीं। स्पष्ट है कि प्रसादजी कामायनी में रूपक-तत्व की सत्ता को

स्वीकार तो करते हैं, पर उनका विशेष अवधान उसकी प्रस्तुत कथा पर ही है। दूसरे शब्दों में यूँ कहें कि प्रसाद जी के विचार से कामायनी में प्रस्तुत कथा प्रमुख तथा अप्रस्तुत अथवा सांकेतिक अर्थ-कथा गौण है। अर्थात् मूल रूप से नहीं तो गौण रूप से ही सही, किन्तु कामायनी में रूपक तत्व निश्चय ही अपना पुरजोर अस्तित्व रखता है। प्राचीन आख्यान में मनु—इड़ा—श्रद्धा आदि सम्बन्धी जो रूपक हैं, उन्हीं के माध्यम से कामायनी के प्रस्तुत कथा-आवरण में मानव के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास की कहानी कहना प्रसादजी को अभीष्ट है तथा इसकी रूपकात्मक योजना उनकी कल्पना की निजी उपलब्धि है। महादेवी जी का अतः यह कहना सर्वथा उचित लगता है कि "कामायनी ऐसा महाकाव्य है, जो ऐतिहासिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित है और सांकेतिक अर्थ में मानव-विकास का रूपक भी कहा जा सकता है।" महादेवीजी के प्रस्तुत कथन तथा उठाये गये प्रश्न का निराकरण इस बात से स्वतः हो जाता है, जब कामायनी के पात्रों का प्रतीकार्थ तथा उसकी घटनावली के गूढ़ार्थ सामने आते हैं। अतएव कामायनी की रूपक-कल्पना के अस्तित्व कतई सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। वह है, और काफी स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक है।

कामायनी की रूपक-कल्पना पर विचार करने के लिए सर्वप्रथम उसके पात्रों तथा उसकी अप्रस्तुत कथा और घटना का विश्लेषण करना होगा। कामायनी की व्यक्त अथवा प्रस्तुत कथा में नायक मनु और उसकी मर्मसंगिनी नायिका श्रद्धा के संयोग से मानव-सृष्टि के विकास की गाथा पिरोई गई है, किन्तु, अप्रस्तुत रूप से यही कथा जीव के अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश तक आध्यात्मिक यात्रा, मानसिक संघर्ष और इच्छा—ज्ञान क्रिया के समन्वय द्वारा अखण्ड घन आनन्द की प्राप्ति में पर्यवसित हो जाती है। निष्कर्षात्मक तौर पर यह कहा जा सकता है कि मनु के माध्यम से मन की कथा इस प्रकार प्रस्तुत की गई है कि दोनों में कहीं-कोई भिन्नता मालूम ही नहीं होती। इस प्रकार स्पष्ट है कि कामायनी की प्रस्तुत कथा में जहाँ ऐतिहासिकता और पौराणिकता के बहुल 'फ्लैशेज' मिलते हैं, वहाँ अप्रस्तुत कथा में मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक तत्वों का उभार काफी मिलता है। इस दृष्टि से दोनों

कथा के बीच जो नैकट्य सम्बन्ध उद्घाटित होता है, वह कामायनीकार प्रसाद की कला की सूक्ष्म विशिष्टता भी है।

अब कामायनी की रूपक-कल्पना का विश्लेषण करें। इसके लिए सबसे पहले पात्रों पर विचार करें। कामायनी में जिन पात्रों की चर्चा की गई है, वे मानव-मन की विभिन्न वृत्तियों को ही प्रायः द्योतित करते हैं। इन पात्रों का कुछ-न-कुछ प्रतीकात्मक अर्थ सन्निहित है, जिसका ग्रहण यूँ किया जाना चाहिए :

पात्र....................प्रतीकात्मक अर्थ
मनु....................मन
श्रद्धा....................हृदय
इड़ा....................बुद्धि तत्व—व्यवसायित्मका बुद्धि
कुमार... ....नव मानव
असुर पुरोहित आकुलि और किलात—आसुरी वृत्तियाँ।
देवता - इन्द्रियाँ।
वृषभ—धर्म।
सोमलता—भोग।
जल-प्लावन—जीव के इन्द्रिय-लिप्सा के दास और अनात्मनोमुखी होने पर चेतना का जल-माया से आवृत्त-परिवृत्त होना।
त्रिलोक—भाव-लोक, कर्म-लोक तथा ज्ञान-लोक (तीन अंगभूत प्रवृत्ति-भाव-वृत्ति, कर्म-वृत्ति और ज्ञान-वृत्ति)।
मानसरोवर—समरसत्ता अर्थात् मानस-समन्वय की अवस्था का प्रतीक जिसमें भाव, कर्म और ज्ञान-तीनों का सामञ्जस्य निहित होता है।

अब इन पात्रों पर किंचित विस्तार से विचार करें। सम्पूर्ण कामायनी महाकाव्य का नायक मनु है, जो मनोमय कोश में स्थित जीव का प्रतीकवत् प्रतिनिधित्व करता है। मनु और मन को प्रायः एक रूप माना गया है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—"मन से अभिप्राय यहाँ चेतना (Conscionsness)

का है। उसका मूल लक्षण है अहंकार—'मैं हूँ' की भावना, जो अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों में अपनी अभिव्यक्ति करती रहती है।"[१] मनु अर्थात् मानव-मन में भी यही अहंकार बलवती और प्रधान होता है तथा उसके पूरे व्यक्तित्व में यह समाहित रहता है। कामायनी के मनु का, निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त अहंकार भाव मात्र उसका न होकर, मानव-मन की समग्रता का अहंकार मालूम होता है—

"मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्या,
लगा गूँजने कानों में ?
मैं भी कहने लगा, 'मैं रहूँ'
शाश्वत नभ के गानों में।"[२]

जब मानव-मन अहंकार-भावना से आप्लावित हो उठता है, तो उसकी तुष्टि में जितने भी व्यवधानक तत्व माने जाते हैं। वे सब के सब ईर्ष्या और द्वेष के कारण बन जाते हैं। यहीं से ईर्ष्या का आविर्भाव होता है। मनु का अहंकार-भाव इस चरम-सीमा पर पहुँच गया है कि 'स्व' के अतिरिक्त उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। वे एकान्त तौर पर श्रद्धा के अनुराग पर अपनी पूर्ण सत्ता के आकांक्षी हैं। उनका स्वार्थी मन अब यह भी सहन करने के लिए तैयार नहीं हैं कि नवजात शिशु भी श्रद्धा के अनुराग का भागी बन सके। अतः वे श्रद्धा से अनुराग के लहजे में कहते हैं—

यह जीवन का वरदान, मुझे
दे दो रानी अपना दुलार।
केवल मेरी ही चिन्ता का,
तब चित्त वहन कर सके भार।[३]

फिर मनु सस्वर सोचता है—

यह जलन नहीं सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व;

१—कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४३।

२—कामायनी, जयशंकर प्रसाद, एकादश संस्करण, आशा (सर्ग) पृ० ३७।

३—कामायनी, जयशंकर प्रसाद, ईर्ष्या पृ० १६०।

इस पंचभूमि की रचना में,
मैं रमण करूँ बन एक तत्व ।[1]

मनु अपनी अहंता में इतना चूर और मदमस्त है कि कामायनी—श्रद्धा की एक भी नहीं सुनता । कामायनीकार प्रसाद का मनु के सम्बन्ध में यह आपेक्ष द्रष्टव्य है—

कह ज्वलनशील अन्तर लेकर,
मनु चले गये, था शून्य प्रान्त,
"रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही ।"
वह कहती रही अधीर श्रांत ।[2]

मनोमय कोश से आनन्दमय कोश तक मन रूप में स्थित मननशील जीव 'मनु' कहलाता है । 'मन्यते अनेन इति मनुः'—अर्थात् जिसके द्वारा मनन किया जाये, वह मन है; और मनु भी वही है । ऊपर के उद्धरण तथा कई अन्य स्थलों पर मनु की मननशील वृत्ति का भरपूर एहसास होता है—

मनु एक पुरुष है—सृष्टि की विध्वंसशीलता की शालीन धाराओं में चपेटा खाता हुआ एकमात्र परिशेप पुरुष ! वही आदि पुरुष भी कहलाता है । वह एक देव भी है तथा उसकी इन्द्रियां भी देव-शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं । ये देव जितने ही अधिक स्वच्छन्द और भोग-विलास की ओर प्रवृत्त होते हैं, उसी अनुपात में जल-माया में भी सम्पृक्त हो जाते हैं और एक ऐसा भी क्षण आता है, जब माया का जल प्रलयकारी सिद्ध होता और सब-के-सब उसमें डूब जाते हैं—

ये सब डूबे, डूबा उनका,
विभव, बन गया पारावार ।'

प्रलय के इस विषम पारावार में मत्स्य (मत्स्यावतार के रूप में भगवान् विष्णु) की कृपा से मात्र मनु (जीव) शेष रह जाता है, जो पर्वत के उत्तंग शिखर (मनोमय कोश) पर बैठकर सजल नयनों से प्रलय-प्रवाह का दर्शन करने को विवश है—

१—वही, पृ० १६५ ।
२—वही, पृ० १६६ ।

हिमगिरि के उत्तुङ्ग, शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह,
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।

मनु अर्थात् मननशील जीव की दो प्राकारिक विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें क्रमशः हृदय और मस्तिष्क के रूप में जानते हैं। कामायनीकार ने इन्हें क्रमशः 'श्रद्धा' और 'इड़ा' नाम से अभिहित किया है। मनु के बाद श्रद्धा ही कामायनी का प्रमुख पात्र है। वह कामगोत्र की जाया और हृदय की रागात्मिका वृत्ति की प्रतीक है—

'श्रद्धा' हृदय्म याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसुः।

(ऋग्वेद)

कामायनी में, कई स्थलों पर उसके इस रूप को प्रसाद जो ने अभिव्यक्त किया है—

एक करुणामय सुन्दर मौन,
और चंचल मन का आलस्य।
× × × ×
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया, उन्मुक्त।

फिर, कामायनीकार प्रसाद उसमें अन्तर्भूत रूप और माधुर्य गुण का चित्रण यूँ प्रस्तुत करते हैं—

और उस मुख पर वह मुसक्यान।
रक्त किसलय पर ले विश्राम
अरुण की एक किरण अम्लान
अधिक अलसाई हो अभिराम।
नित्य-यौवन-छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना-मूर्त्ति,
स्पर्श से आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।

ऊषा की पहली लेखा कान्त,
माधुरी से भीगी भर गोद;
मदभरी जैसे उठे सलज्ज
भोर की तारक-द्युति की गोद।

(कामायनी, पृ० ५७)

कवि की कल्पना के अनुसार श्रद्धा गन्धर्वों के देश में हृदय-सत्ता के सत्य की तलाश में आती है। छान्दोग्योपनिषद् तथा त्रिपुर-रहस्य में श्रद्धा की भाव-मूलक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। उसके व्यक्तित्व में जहाँ एक ओर दया, ममता, सहानुभूति, मधुरिमा, त्याग, क्षमा और करुणा आदि उदात्त वृत्तियों का निवास है, वहाँ दूसरी ओर अगाध विश्वास, अप्रतिम प्रणय, उत्साह और प्रेरणा आदि हृदय के सबल तत्वों का भरपूर अस्तित्व भी दृष्टिगत होता है। विश्वास की तो वह मानो पुतली ही है। तभी तो मनु द्वारा कई बार धोखा खा चुकने पर भी उसके मन में कहीं अविश्वास का एक कतरा भी पैदा नहीं होता। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए श्रद्धा को 'विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति' कहकर पुकारा है।

श्रद्धा के बाद कामायनी के प्रमुख पात्रों में इड़ा का स्थान आता है। यह इड़ा बुद्धि की प्रतीक है। कामायनीकार प्रसाद ने इसके व्यक्तित्व का प्रतीकात्मक चित्र यूँ प्रस्तुत किया है :

बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल !
वह विश्व मुकुट-सा उज्ज्वलतम शशिखण्ड-सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म-पलाश चषक से दृग देते अनुराग-विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल-सदृश वह आनन जिसमें भरा-गान;
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा जीवन-रस सार लिए।
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अवलम्ब दिये।
त्रिवली थी त्रि-गुण तरंगमयी, आलोक-वसन लिपटा अराल।
चरणों में थी गति भारी ताल !

(कामायनी, इड़ा, पृ० १६०)

प्रस्तुत चित्र में कवि ने बुद्धि के तर्क, भौतिक ज्ञान-विज्ञान तथा त्रिगुण आदि तत्वों को समाहित करने की कोशिश की है। बुद्धि की सबसे बड़ी शक्ति उसका तार्किक पक्ष ही है। कवि ने बालों को भौंरे अथवा मेघ से उपमित न कर, उसके तर्क-जाल सा बतलाया है। ज्ञान-विज्ञान सबका नियमन और परिचालन बुद्धि के आधार पर ही होता है। हृदय के रागात्मक तत्वों से इतर होकर बुद्धि की व्यवसायात्मिका वृत्ति द्वारा उसका निर्देशन होता है।

इड़ा को ऋग्वेद में मनु की पथ-प्रदर्शिका की उपाधि दी गई है। शतपथ ब्राह्मण में मनु को इड़ा द्वारा अतुल सम्पत्ति पाने का वर्णन मिलता है। कामायनी में इड़ा (बुद्धि) मनु (मन) की पथ-प्रदर्शिका है।

इड़ा अग्नि-ज्वाला-सी आगे जलती है उल्लास भरी।
मनु का पथ आलोकित करती विपद नदी में बनी तरी।

अब गौण पात्रों को देखें: इनमें सबसे पूर्व श्रद्धा-मनु के पुत्र कुमार का स्थान आता है। कुमार के व्यक्तित्व का भरपूर विकास नहीं हुआ है। और तो और, उसका नामकरण-संस्कार भी नहीं किया जा सका है। केवल शैशव का एक हल्का-सा चित्र अंकित किया गया है और फिर, दूसरा तब, जबकि श्रद्धा कुमार को इड़ा के हाथ सुपुर्द कर मनु की तलाश में निकलने लगती है। कुमार नव-मानव का प्रतीक है। अपने पिता मनु से उसे विरासत में मननशीलता, माता से श्रद्धा अर्थात् हृदय की उदात्त वृत्तियाँ तथा इड़ा से बुद्धि की उपलब्धि होती है। वह उपलब्धि पूर्ण मानवत्व की उपलब्धि है। कारण आध्यात्मिक जीवन में पूर्णता की स्थापना के लिए मानव को श्रद्धा की आवश्यकता होती है तथा भौतिक विकास के लिए बुद्धि के योग की अनिवार्यता सिद्ध होती है। अतः मानव की पूर्णता के लिए बुद्धि के साथ हृदय का भी सामंजस्य अपेक्षित होता है।

असुर-पुरोहित आकुलि और किलात आसुरी वृत्तियों के प्रतीक हैं। मानव-हृदय में सत्-असत् प्रवृत्तियों का परस्पर संघर्ष और द्वन्द्व चलता रहता है। विजय सदा ही बलवती प्रवृत्ति की होती है। श्रद्धा मनु को सत्-पथगामी बनाना चाहती है। जैसे ही मनु (मन) पाप-कर्म (हिंसा-यज्ञ) के प्रति आकृष्ट होते हैं, तत्क्षण ही आकुलि-किलात (आसुरी वृत्तियाँ) उसे और भी दुष्प्रेरित

करते हैं। मनु की अहंमान्यता इस कदर बढ़ती है कि वे श्रद्धा (सद्वृत्ति) तक को त्याग कर इड़ा (बुद्धि) का आश्रय ग्रहण करते हैं। मनु जब इड़ा (बुद्धि) पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित नहीं कर पाते, और प्रजा विद्रोह कर उठती है, तब आकुलि और किलात ही उन विद्रोहियों का नेतृत्व करते हैं। मनु के मन में यह देखकर अत्यन्त कष्ट होता है कि जिन आकुलि-किलात (आसुरी प्रवृत्तियों) के कारण एक दिन वे पाप-कर्म (हिंसा यज्ञ) प्रवृत्त हुए थे और वे ही शत्रु का काम करने लगे हैं। परिणामस्वरूप मनु के मन में निर्वेद की उत्पत्ति होती है :

> और शत्रु सब, ये कृतघ्न फिर
> इनका क्या विश्वास करूँ ?
> प्रतिहिंसा, प्रतिशोध दबाकर
> मन ही मन चुपचाप मरूँ।
>
> (कामायनी, निर्वेद, पृ० २४२)

तात्पर्य यह है कि आसुरी वृत्तियाँ मन को पहले पाप-कर्म में प्रवृत्त करती हैं और परिणाम स्वरूप मन को जब कष्ट भोगने की बारी आती है, तब ये आसुरी वृत्तियाँ ही उसके कष्ट की वृद्धि में योग देती हैं।

इनके उपरांत देवों का स्थान आता है। कामायनीकार ने देवों का प्रतीकात्मक अर्थ इन्द्रियों के रूप में उपस्थित किया है। देवों की 'वासना की उपासना' तथा आत्मतुष्टि का अर्थ क्रमशः इन्द्रियों की ही वासना की उपासना' उसकी तुष्टि है—

> अरी उपेक्षा-भरी अमरते !
> री अतृप्ति ! निर्बाध विलास !

श्रद्धा का पशु, जिसका नाम तथा जाति आदि वर्णित नहीं है, वह जीव-दया, करुणा तथा अहिंसा का द्योतन करता है—

> एक माया ! आ रहा था पशु अतिथि के साथ,
> हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ !
> चपल-कोमल कर रहा फिर सतत् पशु के अंग,
> स्नेह से करता चमर उद्ग्रीव हो वह संग।

× × × ×

कभी निज भोले नयन से अतिथि वदन निहार,
सकल संचित स्नेह देता दृष्टि-पथ से ढार।
(कामायनी, वासना, पृ० ६३)

वृषभ तथा सोमलता का भी अपना प्रतीकार्थ है। वृषभ भारतीय धर्म-शास्त्र में अनादि काल से ही धर्म का प्रतीक माना जाता रहा है—

था सोमलता से आवृत्त
वृष धवल, धर्म का प्रतिनिधि।
(कामायनी, आनंद पृ० २८६)

सोमलता भोग की प्रतीक है। यहाँ 'सोमलता से आवृत्त वृषभ' का तात्पर्य है भोग-समन्वित धर्म, जिसको सर्वथा त्यागकर चिर आनन्द और आत्म-स्वरूप की प्राप्ति की जाती है।

अब तीन प्रतीक और भी शेष बच जाते हैं—जल-प्लावन त्रिलोक और मानसरोवर। जल-प्लावन न केवल भारत की अपितु, सम्पूर्ण सृष्टि की यह अति प्राचीन घटना है। धर्मशास्त्र तथा दर्शन शास्त्र में इसके प्रतीक को व्यक्त कर सांकेतिक अर्थ का ही द्योतन किया गया है। मनु (मन) जब निर्वाध रूप से इन्द्रिय-लिप्सा की उपासना में आत्यन्तिक तौर पर लीन हो जाता है अर्थात् जब आत्मा को खोकर अनात्मोन्मुखी या यूं कहें कि विज्ञान-मय तथा आनन्दमय कोश की ओर न बढ़कर अति निम्नतम अन्नमय कोश में ही रमा रह जाता है, तो उसकी अन्तर्चेतना पूर्णतः जल-माया में आवृत्त हो जाती है—डूब जाती है।

त्रिलोक की प्रेरणा, कवि ने प्राचीन त्रिपुर-दाह से ग्रहण किया है। इसका प्रतीकार्थ बिल्कुल स्पष्ट भी है। त्रिलोक, भावलोक, कर्म-लोक और ज्ञान-लोक चेतना की क्रमशः तीन प्रवृत्तियों—भाव-वृत्ति, कर्म-वृत्ति तथा ज्ञान वृत्ति के प्रतीक हैं। इन तीनों के सामंजस्य में ही जीवन के वास्तविक आनन्द की अपेक्षा की जा सकती है। केवल इच्छा पंगु है, उसके लिए कर्म की सहा-यता अनिवार्य होती है और, उसी तरह मात्र कर्म भी अन्धा होता है, उसे ज्ञान की रंजत-रश्मि चाहिए।

"ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।"

(कामायनी, रहस्य, पृ० २८४)

किन्तु, इन तीनों का जब समन्वय श्रद्धा द्वारा हो जाता है तो मन को समरसता की अवस्था प्राप्त हो जाती है—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो—
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धा युत मनु बस तन्मय थे।

(कामायनी, रहस्य, पृ० २८५)

मानसरोवर को शतपथ-ब्राह्मण में 'मनोरवसर्पण' कहकर अभिहित किया गया है—

तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमिति।

यह स्थान कैलास-शिखर पर स्थित है, जहाँ श्रद्धा की सहायता से मनु पहुँचकर मानसिक क्लेश से मुक्त होकर आनन्द की उपलब्धि करते हैं। कामायनीकार ने इसके लिए 'मानस' शब्द का प्रयोग किया है। यह 'मानस' समरसता जन्य आनन्द का प्रतीक है अथवा यूँ कहें कि यह मानसिक समन्वय की अवस्था है, जिसमें भाव कर्म और ज्ञान एक लय हो जाते हैं।

रूपक और प्रतीक को हटा देने पर, कामायनी की प्रस्तुत कथा में नायक मनु की कैलास-स्थित मानसरोवर-यात्रा वर्णित है, जहाँ पहुँचकर उसके समस्त मानसिक क्लेश का परिशमन होता है। पारिभाषिक शब्दावली में यूँ कहें कि मनोमय कोश में स्थित जीव द्वारा आनन्दमय कोश की यात्रा के प्रयास की गाथा-कथा है, जिसका पर्यवसान मानसिक संघर्ष तथा इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामंजस्य द्वारा अखण्ड आनन्द की प्राप्ति में होता है।

रूपक को हटा दें तो कामायनी की कथा-मात्र इतनी ही शेष रह जाती है : महाप्रलय के उपरान्त पूरी सृष्टि में केवल नायक मनु ही शेष रह गया

है। देव-सभ्यता का आत्यन्तिक पतन हो गया है। मनु चिन्ताकुल हैं। इसी अवस्था में कामगोत्र की बाला—कामायनी व श्रद्धा से परिचित होकर उसकी ओर वह आकृष्ट होता है। श्रद्धा उसके साथ रहने का उपक्रम आत्म-समर्पण के साथ शुरू करती है। दोनों के पारस्परिक मिलन के पश्चात् काम की उत्पत्ति होती है। बाद में मनु को श्रद्धा में उस चंचलता का सर्वथा अभाव लक्षित होता है, जिसके कारण पुरुष का मन उत्तेजित और आकर्षित होता है। श्रद्धा मातृ स्वरूपा है। उसकी दया ममता का विस्तार अन्य प्राणियों में भी होने लगता है। मनु के मन में पौरुष की अहंमन्यता का विकास होने लगता है। परिणामस्वरूप उसके मन में ईर्ष्या का भाव जाग्रत होता है और वह यह कि श्रद्धा दूसरों को स्नेह क्यों दे? पूरा का पूरा स्नेह उसे ही मिलना चाहिए। इस ईर्ष्या और अहंकार के कारण उसका मन उखड़ा-उखड़ा सा रहने लगा। सारस्वत प्रदेश में उसकी मुलाकात वहाँ की रानी—इड़ा से होती है। कुछ समय तक दूर रहने के बाद मनु इड़ा पर भी पूर्ण सत्ताधिकारी का स्वप्न देखने लगे, किन्तु जब आधिपत्य जमाने में सफलता हाथ नहीं लगती, तब उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। अब घायल मनु फिर श्रद्धा की ओर आकर्षित तथा प्रवृत्त होते हैं। श्रद्धा उन्हें त्रिदक् विश्व के तीनों ही ज्योतिपिण्डों का रहस्य समझाती हैं। मनु के सम्पूर्ण मानसिक क्लेश का परिशमन हो जाता है और उन्हें आनन्दोपलब्धि हो जाती है। आनन्द की सम्यावस्था की प्राप्ति पूरी यात्रा का महत् उद्देश्य है, जिसका चित्रण और वर्णन करना कामायनीकार को अभीष्ट है।

इसकी अप्रस्तुत कथा का संकेतार्थ मात्र इतना ही है कि मन स्वभावतः मननशील और अहंकारी है। रागात्मकता के प्राधान्य होने पर ही मन में श्रद्धा का आविर्भाव होना संभव है। वस्तुतः विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति का ही दूसरा नाम है श्रद्धा। इसके कारण ही मन में आत्मविश्वास और जीवन की रागात्मक संभव है। काल-क्रम में आसुरी वृत्तियों के कारण मन भोगवाद की ओर दुष्प्रेरित होता है। किन्तु जब तक श्रद्धा का पुरजोर अस्तित्व मन पर कायम रहता है, तब तक वह नियंत्रित रहता है। किन्तु मन उसका त्याग ज्यों ही करता है, तत्क्षण वह नीचे प्राणमय कोश में पहुँचकर इड़ा अर्थात्

बुद्धि के चक्र में फँस जाता है। यह बुद्धि व्यवसायात्मिकता वृत्ति का दूसरा नाम है। यह मन के अहंकार का परिष्कार नहीं करती, प्रत्युत् उसे संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। मन बुद्धि अपनी पूर्ण सत्ता का द्रष्टता होता है लेकिन जब उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती तो उसके लिए मानसिक प्रलय-सी हो जाती है।

इसके उपरान्त मन में ग्लानि का भाव काम करने लगता है। और फिर उसे श्रद्धा अथवा रागात्मिका वृत्ति की ओर मुड़ना पड़ता है। श्रद्धा के कारण उसे त्रिदिक विश्व के ज्योतिर्पिण्डों का रहस्य मालूम होता है। परिणामस्वरूप उसके मानस का सारा क्लेश परिशमित हो जाता है। आनन्द की प्राप्ति ही मन की मंजिल होती है।

इसका प्रतीकार्थ केवल यही है कि आनन्द की प्राप्ति बुद्धि अथवा भावुकता में से किसी एक से कतई सम्भवा नहीं। बुद्धि के आतिशय्य के कारण मन पराभाव से ग्रस्त हो जाता है। फलस्वरूप उसे ग्लानि और निर्वेद से होकर गुजरना पड़ता है और जीवन के प्रति पलायनवादी दृष्टिकोण हावी होने लगता है। जिस क्षण श्रद्धा द्वारा पराभाव का कारण समझ में आता है, और रहस्य का आवरण हटता तथा भाव, ज्ञान और कर्म-वृत्ति के सामंजस्य का अनुशोधन होता है; मन समरसता की अवस्था को प्राप्ति कर आनन्द तत्व में समाहित हो जाता है। यह सगुण भक्ति का आनन्द नहीं प्रत्युत शैव-दर्शन का आत्मानन्द है। श्रद्धा द्वारा कुमार का इड़ा को सौंपा जाना भी सामञ्जस्य का ही प्रतीक है। स्पष्ट है कि प्रसाद जी का यहाँ दार्शनिक रूप ही व्यक्त होता है और वे कहना यह चाहते हैं कि विकल्पात्मक और संकल्पात्मक अथवा बौद्धिकता और आध्यात्मिकता की अनुभूति के सामञ्जस्य यानी इच्छा ज्ञान और कर्म की एकनिष्ठता होने पर ही मन की शान्ति तथा संस्कृत अधिष्ठित-प्रतिष्ठित हो सकती है।

कामायनी का प्रणयन उस समय हुआ था, जब भारत में स्वतन्त्रता का आन्दोलन तथा गांधी जी द्वारा परिचालित अहिंसा की क्रांति काफी जोर थी। किसी भी महान कृति में युग-जीवन तथा संस्कृति के परिवेश का स्वर निनादित होता है। कामायनी एक सशक्त (कॉन्शस) कवि की रचना है तो फिर

वह इस सिद्धांत से पलायित और वंचित कैसे हो सकती है ? गांधी जी के प्रभाव से वह बच नहीं सकी है। अहिंसा के समर्थन मशीनों के विरोध और अवरुद्ध संस्कृति को पुनर्जीवन के स्वर में उसको छिटक भरपूर देखने को मिलती है। डा० नगेन्द्र का यह कहना अतः ठीक ही लगता है— "यह श्रद्धा अर्थात् रागात्मिकता वृत्ति गांधी जी की अहिंसा और पाश्चात्य दार्शनिकों की मानव-भावना की पर्याय है। × × ×

आज के पूंजीवाद से पीड़ित समाज की विडम्बनाओं का समाधान यही मानववाद है, जिसका भौतिक रूप समाजवाद और आध्यात्मिक रूप गांधीवाद है।"[१]

इन तथ्यों के स्पष्टीकरण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कामायनी में रूपक कल्पना का भरपूर प्रयोग कामायनीकार ने प्रसाद ने किया है। इसकी रूपक-कल्पना में जहाँ एक ओर धर्म तथा दर्शनशास्त्र के प्रतीकों की भरमार है, वहाँ दूसरी ओर गांधी-युगीन प्रभावों से पूरित प्रतीक भी मिलते हैं। मानसिक वृत्तियों के मानवीकरण के लिए कवि को कहीं-कहीं मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों और सूत्रों की सूक्ष्म और अतल गहराई में भी प्रविष्ट होना पड़ा है। इस आधार पर कामायनी के प्रतीक मनोविज्ञान सम्मत बन पड़े हैं। वैसे जहाँ कहीं सूक्ष्मता के निरूपण का प्रसंग आया है, उन स्थलों पर कतिपय असंगतियाँ भी हाथ लगती हैं। फिर भी, कुल मिला कर देखने पर यही निष्कर्ष हाथ लगता है कि कामायनी में कामायनीकार प्रसाद की रूपक-कल्पना उनकी प्रतिभा कला-साधना के प्रभाव से निष्णात हुई है। रूपकात्मक कल्पना के द्वयार्थक प्रयोग से इसकी व्यञ्जना-शक्ति और भी जोरदार और प्रभावोत्पादक बन पड़ी है। मुझे तो ऐसा लगता है कि कामायनी की रूपक-कल्पना इसके भाव-वैविध्य को जहाँ एक ओर परिशापित करती है, वहाँ दूसरी ओर आधार का भी कम काम नहीं करती।

१—कामायनी के अध्ययन की समस्याएं, डॉ० नगेन्द्र, पृ० ५१।

६

कामायनी की ऐतिहासिकता

प्रो० श्री भारतभूषण "सरोज" एम० ए०, साहित्यरत्न

विना कथानक के किसी महाकव्य की कल्पना असम्भव ही है। कथानक ऐतिहासिक या काल्पानिक किसी भी प्रकार का हो सकता है। कामायनी के कवि ने सृष्टि के आरम्भ की कथा अपने काव्य के लिए चुनी है। कथानक का चुनाव करते समय कवि के हृदय में यह आशंका स्वयं ही जाग्रत हो उठी है कि इस युग के पाठक के मस्तिष्क में अवश्य ही इस कथानक के विषय में प्रश्नवाचक चिन्ह लगेगा। इसीसे उसने अपने ग्रन्थ की भूमिका में उपनिषद, पुराणादि के प्रमाण देकर यह समाधान उपस्थित कर दिया है कि वह इसे सच्चे अर्थों में ऐतिहासिक कथानक मानता है। कथा का उद्‌घाटन करते समय कवि को अपनी कल्पना के प्रयोग का जो अधिकार प्राप्त है उसका उसने पूर्ण उपयोग किया है इसमें सन्देह नहीं।

आज के दृष्टिकोण से कामायनी का कथानक ऐतिहासिक नहीं है क्योंकि उसकी कथा प्रागैतिहासिक काल की है। सारे भारतीय वाङ्मय को इतिहास मान लेने पर ही इसके कथानक को ऐतिहासिक कहा जा सकता है और ऐसा मानना उचित भी है।

कामायनी के अधिकांश कथानक का आधार पुराण हैं। पाश्चात्य विद्वान् पार्जिटर ने पुराणों का गम्भीर अध्ययन किया था और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पुराण इतिहास ही है। वे कहते हैं कि पुराणों में क्षत्रिय राजाओं के चरित्र तथा कार्य-कलापों का वर्णन है। यद्यपि उनमें राजाओं की वंशावलियों तथा घटनाओं का क्रम वद्ध रूप नहीं है। मनु की कथा भिन्न-भिन्न

रूपों में मिलती है। पुराणों में सबसे अधिक मनु का ही नाम पाया जाता है। अतः प्रतीत होता है कि वह अपने समय का सबसे बड़ा राजा था। पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदि क्षत्रिय वंश तीन है—सूर्य वंश, चंद्र वंश तथा यदु वंश। इन तीनों वंशों के मूल मनु ही हैं। पुराणों में मनु के दस पुत्रों का उल्लेख है। (कामायनी में इनके एक ही पुत्र सर्याति या मानव का उल्लेख है।)

वास्तव में पुराणों में भारतीय इतिहास ने मूल पुरुष मनु ही हैं। प्रसाद जी ने पुराणों को प्रागैतिहासिक नहीं, अपितु ऐतिहासिक ही माना है तथा वे मनु को इतिहास का प्रथम पुरुष मानते हैं। उन्होंने कामायनी के आमुख में कहा है—"जल प्लावन भारतीय इतिहास की एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसमें मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया वह इतिहास ही है। 'मनवे वै प्रातः' इत्यादि से इस घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में मिलता है। देव गण के उच्छृङ्खल स्वभाव, निर्बाध आत्म तुष्टि में अन्तिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्तक मनु हुए। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं।"

कामायनी के मूलाधार ग्रन्थ ऋग्वेद पुराण तथा शतपथ ब्राह्मण हैं। कामायनी के मुख्य पात्र श्रद्धा, मनु तथा इड़ा की कथाएँ अक्रम, असम्बद्ध तथा बिखरी हुई मिलती हैं। उनमें किसी निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन हो जाता है। जल प्लावन की कथा, देव सृष्टि वर्णन, श्रद्धा मनु की प्रणय कथा, थोड़े से उलट फेर के साथ, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, वायु पुराण, अग्नि पुराण, ब्रह्म पुराण, मारकंडेय पुराण, मत्स्य पुराण, देवी भागवत पुराण तथा श्रीमद्भागवत आदि में मिलती है। छान्दोपयोपनिषद् तथा त्रिपुर रहस्य में श्रद्धा की भावमूलक विवेचना की गयी है। कामायनी के अन्तिम तीन सर्गों की रचना शैवागमों के प्रत्यभिज्ञान दर्शन के आधार हुई है। प्रसाद जी को कामायनी की रचना करने के लिये कितने ही ग्रन्थों का मंथन करना पड़ा

था। उन्होंने यत्र-तत्र बिखरी घटनाओं को शृंखलित कर कथा को एक-रूपता दी तथा उसे काव्यात्मक बनाया।

कामायनी के पूर्ण भाग की प्रायः सभी घटनाए ऐतिहासिक हैं। कामायनी का प्रारम्भ जल प्लावन से होता है। इस घटना का वर्णन केवल हमारे पुराणों तथा धार्मिक ग्रन्थों में ही नहीं मिलता, प्रत्युत् ईसाई, इस्लामी, यहूदी आदि धर्म ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। इसमें हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह घटना सत्य है तथा अति प्राचीन है।

कामायनी में जल प्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के आठवें अध्याय के आधार पर हुआ है। शतपथ में बताया है कि मनु की नाव मत्स्य के पंख से बँधकर हिमालय प्रदेश में पहुँची थी, किन्तु प्रसादजी कामायनी में मत्स्य के चपेटे से नाव का हिमवान पर पहुँचना बताते हैं। उनके इस परिवर्तन से ऐतिहासिकता की रक्षा के साथ ही वास्तविकता का भी समावेश हो जाता है। जलप्लावन कम हो जाने पर मनु जिस स्थान पर उतरे थे उसका नाम मनोखसर्पण है। वह स्थान आज पर्यन्त इसी नाम से प्रसिद्ध है। जल-प्रवाह कम होने पर मनु यज्ञ आरम्भ करते हैं। इसका उल्लेख शतपथ के प्रथम काण्ड के पाँचवें अध्याय में है। शतपथ में लिखा है कि यज्ञ से बचे अन्न को मनु एक स्थान पर रख आते थे। उसी अन्न को देखकर श्रद्धा उनके पास आती है। प्रसाद जी ने यहाँ थोड़ा परिवर्तन अवश्य कर दिया है, परन्तु इसमे उसकी ऐतिहासिकता पर कोई आघात नहीं पहुँचता। कामायनी में शतपथ के आधार पर ही किलात-आकुलि असुरों द्वारा मनु से पशु यज्ञ कराया गया है।

इड़ा तथा मनु की बातचीत, इड़ा का मनु को उनको पुत्री बनाना, मनु का उसके प्रति आकृष्ट होकर स्वच्छन्द प्रेम स्थापित करने का प्रयत्न, फलतः देवताओं का कोप और मनु का दण्ड पाना आदि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार है। सारस्वत प्रदेश में इड़ा का मनु की पथ प्रदर्शिका होना ऋग्वेद के आधार पर है। श्रद्धा का मातृ गृह निर्माण, तकली कातना, दिन चर्या पशु पालना, मनु के पशु को बलि दे देने पर मान करना, ऊन की पट्टी बुनना आदि कुछ घटनाएँ कवि कल्पित हैं। किन्तु इन घटनाओं के समावेश से इसकी ऐतिहा-

सिकता में किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचने पाया है। मनु का पुत्र प्रेम से ईर्ष्यालु होकर भाग जाना भी कवि कल्पित ही है। इस प्रकार इन्हीं कुछ बातों को छोड़कर कामायनी के पूर्व भाग की प्रायः सभी घटनाएं ऐतिहासिक हैं।

कामायनी के ऊपर भाग की अधिकांश घटनाएं कवि कल्पित हैं। श्रद्धा का स्वप्न देखकर मनु के निकट जाना, वहाँ श्रद्धा, मनु, कुमार तथा इड़ा का वार्तालाप, मनु का ग्लानिवश भाग जाना, श्रद्धा का मनु की खोज में पुनः जाना, दोनों का पुनर्मिलन और कैलाश पर जाकर रहना, इड़ा का मानव और नगरवासियों के साथ कैलाश पहुँचना आदि कवि कल्पित हैं। प्रसाद जी ने कामायनी में इन सब कल्पित घटनाओं का समावेश हृदय तक पहुँचने तथा काव्य में एकरूपता लाने की दृष्टि से ही किया है। ऐतिहासिक घटनाओं में कल्पित घटनाओं का मिश्रण करके भी प्रसाद जी ने ऐतिहासिक वातावरण की पूर्णतः रक्षा की है।

इतिहास व्यक्ति की अभिव्यक्ति करता है तो काव्य व्यक्ति द्वारा जाति को। इतिहास में श्रद्धा व्यक्ति ही है किन्तु काव्य में वह नारी जाति का प्रतिनिधित्व कर रही है। पुराणों में श्रद्धा में नारीत्व का विकास नहीं मिलता। वह एक साधारण-सी स्त्री के रूप में ही हमारे समक्ष आती है। श्रद्धा के व्यक्तित्व का विकास दिखाने के उल्लेख से कवि को घटनाओं का क्रम उलटना पड़ा है। यहाँ कवि की अपनी कल्पना भी कार्य करती दृष्टिगत होती है। श्रद्धा का मनु को आत्म समर्पण कवि की अपनी कल्पना है। यहाँ श्रद्धा नारीत्व के सभी गुण, सेवा, दया, माया, ममता, त्याग, करुणा आदि से परिपूर्ण है। श्रद्धा भारतीय साहित्य की अनुपम नारी है इस प्रकार के भव्य नारीत्व की सृष्टि कवि की कल्पना द्वारा ही सम्भव हो सकी है।

कामायनी में वेद और पुराणों में अङ्कित श्रद्धा के सत् स्वरूप की रक्षा में कवि का सफल प्रयास रहा है। शतपथ में मनु के असत् चरित्र के कारण देवता उस पर रोष करते हैं। कामायनी में मनु केवल देवताओं के ही कोप भाजन नहीं बनते अपितु, समस्त प्रजा भी क्रोधावेश में उन्हें घायल कर देती है

इस प्रकार कवि ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करते हुए उसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन भी करता रहता है।

कवि को केवल ऐतिहासिक घटनाओं की ही रक्षा नहीं करनी पड़ती उसके लिए पात्रों का ऐतिहासिक व्यक्तित्व बनाये रखना भी अनिवार्य होता है। वेदों तथा पुराणों में मनु के दो व्यक्तित्व हमारे समक्ष आते हैं। एक तो स्मृतिकार मनु का व्यक्तित्व और दूसरे मानव सृष्टि के निर्माता मनु का व्यक्तित्व प्रसाद जी ने मनु के दोनों ही प्रकार के व्यक्तित्व की रक्षा सुन्दर ढंग से की है। कामायनी में देव सृष्टि के विध्वंस के पश्चात् मनु को मानव सृष्टि का प्रवर्त्तक दिखाया गया है। सारस्वत प्रदेश में कवि ने मनु को नियामक बनाकर उनके स्मृतिकार के रूप को व्यक्त किया है। ऋग्वेद शतपथ तथा पुराणों में श्रद्धा एक भव्य तथा विश्वासमयी नारी के रूप में चित्रित की गई है। त्रिपुर रहस्य तथा छान्दोग्योपनिषद् में भी श्रद्धा की भाव-मूलक व्याख्या ही अधिक पायी जाती है। प्रसाद जी ने कामायनी में श्रद्धा के इसी व्यक्तित्व को विशद रूप में अंकित किया है। स्त्री जाति की सेवा, दया, माया, ममता, त्याग, करुणा आदि सभी विशेषताओं की मानों वह प्रतीक है। ऋग्वेद इड़ा को मनु की पथ-प्रदर्शिका कहा है। शतपथ में भी इड़ा द्वारा मनु को यज्ञ में अतुल सम्पत्ति मिली है। कामायनी में भी कवि ने उसके व्यक्तित्व की रक्षा के लिए ही उसे सारस्वत प्रदेश में मनु की पथ-प्रदर्शिका बनाया है। मनु को सारस्वत प्रदेश का शासक बना देने से उसे अतुल सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। पशु यज्ञ में किलात आकुली को पुरोहित बनाना शतपथ के आधार पर है। कामायनी में श्रद्धा, मनु, इड़ा, किलात आकुली तथा मानव (शर्याति) यह छः ही ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कवि को यद्यपि विशृङ्खल घटनाओं को कथात्मक रूप देने के लिए थोड़ा उलट फेर करना पड़ा है। किन्तु इससे किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर कोई आघात नहीं पहुँचने पाया है।

किसी भी ऐतिहासिक रचना में केवल ऐतिहासिक घटना और पात्र के व्यक्तित्व की रक्षा ही आवश्यक नहीं होती, उस रचना में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि भी अनिवार्य होती है। तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के लिये कलाकार को उस समय की सामाजिक धार्मिक तथा राजनीतिक सभी परिस्थितियों को अङ्कित करना पड़ता है। उसे उस काल की सभ्यता शिक्षा

तथा आचार विचार आदि को भी दिखाना पड़ता है। प्रसाद जी कामायनी में ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करने में भी पूर्ण सफल रहे हैं।

उस युग में मनुष्य फूँस की झोंपड़ी बना कर रहते थे। कुछ हड्डी या पत्थर के अस्त्र-शस्त्र काम में लाते थे। पशु-पालन और कृषि भी करते थे। कामायनी में इस वातावरण की कवि ने सफल अभिव्यक्ति की है। श्रद्धा तथा मनु पुआलों की छाजन का घर बनाकर रहते हैं। श्रद्धा ऊन की पट्टीयां बुनती है तथा पशुपालन भी करती है। मनु मृगया के लिये जाते हैं तथा अन्न से यज्ञ भी करते हैं।

कामायनी में इस ऐतिहासिकता के साथ ही रूपक तत्त्व का समावेश हुआ है। इसमें श्रद्धा मनु तथा इड़ा के जीवन से हमें भावात्मक सन्देश मिल जाते हैं—यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है। इसीलिये मनु श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्त्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं हैं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता लग जाता है।

इस प्रकार कामायनी की एक कथा एक ओर तो देव सृष्टि के विध्वंस के पश्चात् एक नवीन मानव संस्कृति की प्रतिष्ठा करती है और दूसरी ओर मन के दोनों पक्ष हृदय और मष्तिष्क का संघर्ष भी उपस्थित करती है। अन्त में कवि हृदय पक्ष की विजय दिखाकर अखन्ड आनन्द की स्थापना करता है। मनु के जीवन से कवि ने व्यक्त किया है कि बुद्धिवाद में पड़ कर मनुष्य का जीवन सदैव उलझन में पड़ा रहता है। जब उसके हृदय में प्रेम उदारता आदि उदात्त भावनाओं का आविर्भाव होता है तभी उसे शान्ति मिलती है।

अतः स्पष्ट है कि प्रसाद जी का झुकाव इतिहास के भौतिक तत्त्वों की ओर उतना नहीं है जितना मनोविज्ञान की ओर सम्भवतः प्रसाद जी ने कामायनी की सृष्टि कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही की थी। वे उद्देश्य हैं मनोवैज्ञानिक सांस्कृतिक दार्शनिक तथा ऐतिहासिक।

प्रसाद जी इतिहास के भौतिक रूप को उतना महत्त्व नहीं देते थे जितना

उसके मनोवैज्ञानिक रूप को। इसी कारण कामायनी में उनका मन घटनाओं के वर्णन में उतना नहीं लगा जितना मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण में। प्रसाद जी का विश्वास है कि किसी भी देश की संस्कृति युग-युग की तपस्या का फल है अतः उस देश का हित उसे अपनाने में ही है। तभी वह भारतीय संस्कृति के मूल सिद्धान्तों का उद्घाटन यत्र-तत्र करते चलते हैं। वे पुराणों में भी इतिहास का अस्तित्त्व स्वीकार करते हैं उन्हें यह बात सत्य नहीं कि प्राचीन भारत का इतिहास नहीं मिलता अथवा वेद और पुराण प्रागैतिहासिक हैं। उन्होंने वेदों पुराणों तथा उपनिषदों के कथानकों को शृङ्खला वृद्ध कर तर्क-युक्ति तथा प्रमाण द्वारा ऐतिहासिक सिद्ध किया है। साथ ही प्रसाद जी ने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि भारतीय इतिहास की प्रवृत्ति आरम्भ से ही आदर्शोन्मुख रही है। इस दृष्टि से कामायनी की ऐतिहासिक भित्ति दार्शनिक भूमि पर खड़ी है। उनकी दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं तथा पात्रों का उतना मूल्य नहीं है जितना युग-युग से उनके हृदय में छिपी आत्मानुभूति का। दार्शनिक इसे ही चिरन्तन सत्य के नाम से पुकारते हैं। प्रसाद जी का अधिकांश जीवन इसी चिरन्तन सत्य की खोज में व्यतीत हुआ था। इसी कारण उनकी अन्तिम कृति कामायनी में दर्शन का विकास ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर तथा इतिहास का विकास दर्शन की पृष्ठ भूमि पर हुआ है।"

७

कामायनी में महाकाव्यत्व

प्रो० हरगोविन्द च० नायक एम० ए०

'कामायनी' कविर्मनीषी प्रसाद जी की न केवल सर्वोत्कृष्ट काव्यकृति है वरन् हिन्दी-काव्य-साहित्य में अपने ढंग की एक मात्र उत्कृष्ट काव्य-रचना है।

'कामायनी' के महाकाव्यत्व पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है। आ० नन्ददुलारे वाजपेयी जी परंपरागत महाकाव्य के लक्षणा की पूर्ति न करने पर भी 'कामायनी' को नये युग का महाकाव्य कहने से हिचकते नहीं। श्री विनय मोहन शर्माजी ने 'कामायनी' को छायावाद का प्रथम महाकाव्य कहा है। डा० नगेन्द्रजी ने इसे परम्परागत और नूतन शैलियों के संमिश्रण द्वारा एक नूतन महाकाव्य-शैली का सृजन माना है। श्री रामजी-लाल सिंह जी ने आधुनिक युग में मानव-अन्तवृ'त्तियों एवम् उनकी आध्या-त्मिक नियोजना को महाकाव्य की रोचकता का मुख्य कारण मानकर 'कामायनी को परम्परावादी महाकाव्यों से भिन्न 'भाव-प्रधान महाकाव्य' माना है। सुश्री महादेवी जी ने 'कामायनी' को महाकाव्यों के इतिहास में एक नूतन अध्याय के रूप में स्वीकार किया है...............क्योंकि वह एक ऐसा महाकाव्य है जो ऐतिहासिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित है और सांके-तिक अर्थ में मानव-विकास का रूपक भी कहा जा सकता है। कल्याण-भावना की प्रेरणा की ओर समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण वह भारतीय परम्परा के अनुरूप है।" संक्षेप में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी ने 'कामायनी' को महाकाव्य घोषित किया है।

उपयु'क्त निष्कर्षों में काव्य की परम्परागत स्वरूप शैली के साथ

नूतनता, मानव-अन्तर्वृत्तियों एवम् आध्यात्मिक-नियोजन से भाव-प्रवणता, ऐतिहासिक कथावस्तु में मानव-विकास की रूपकात्मक सांकेतिकता का समन्वय और कल्याण-भावना आदि विभिन्न मापदण्डों के आधार पर 'कामायनी' का महाकाव्यत्व सिद्ध किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'कामायनी' में शैली की नूतनता के साथ ऐतिहासिकता, मनोवैज्ञानिक रूपकत्व, आर्थिक-सामाजिक-विकास-क्रम, दार्शनिक चिंतन, मानवीय श्रेष्ठ उपलब्धि आदि की श्रेय और प्रेय से समन्वित वस्तु-संकलना की कुशलता अद्वितीय है।

किन्तु 'कामायनी' में महाकाव्यत्व पर विचार करने से पूर्व मेरे मन में एक प्रश्न उद्भूत होता है कि प्रसादजी ने 'कामायनी' का सृजन क्यों किया ? मेरी दृष्टि से इसी प्रश्न के उत्तर में ही 'कामायनी' के महाकाव्यत्व का रहस्य छिपा है।

वस्तुतः काव्य का स्वरूप-निर्माण (अगर उसका स्रष्टा प्रतिभाशील है तो) शास्त्रीय नियमों का कायल नहीं। काव्य का स्वरूप-निर्माण कवि की आत्मानुभूति के प्रबल मंथन से कवि की प्रतिभा के संस्पर्श का स्वाभाविक परिणाम है। काव्य कवि के व्यक्तित्व की गंगोत्री से उद्भूत स्वतः सरिता जान्हवि है जिसमें कवि के व्यक्तित्व का कण-कण समरस रूप में प्रवाहित रहता है। अतः किसी भी कवि की रचना को उसके व्यक्तित्व से अलग करके समझा नहीं जा सकता। यहाँ व्यक्तित्व का अर्थ कवि की अन्तर्चेतना से है जिसमें जीवन और जगत के प्रति कवि की चिन्ता-धारा, दार्शनिक मान्यताएँ, काव्य संबंधो धारणाएँ, बौद्धिक स्तर एवम् कल्पना-शक्ति आदि समाहित हैं।

'कामायनी' के कवि आनन्दवादी शैव-दर्शन से अनुप्राणित आत्मवादी है। प्रसाद जी का स्पष्ट विश्वास है कि आत्मा, जो संस्कारजन्य वासनाओं से लिप्त होने के कारण अपने मूल स्वरूप को भूल गयी है, मूलतः आनन्द स्वरूप है— "अयमात्मा परानन्दः पर प्रेमास्पदं यतः।" प्रसादजी के समग्र काव्य सिद्धांतों एवम् जीवन दर्शन में इसी आनन्द स्वरूप आत्मा की चिन्तन-धारा का प्रभाव है। एक ओर काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति कहकर उन्होने काव्य को अध्यात्म से अभिन्न माना है और भेद-संस्कारों से विगलित आत्मा की समरस आनन्दावस्था को रस-दशा सिद्ध किया है—"विगलितभेद संस्कार-मानन्द रसप्रवाहमयमेव।" तो दूसरी ओर प्रथम और द्वितम आत्मा और

जगत—की भिन्नता मिटाकर समरसता स्थापित करनेवाली स्थिति को अद्वैत माना है। 'नाटकों में रस प्रयोग' नामक निबन्ध में वे लिखते हैं—"जिस तरह आत्मा की ओर इदम् की विभिन्नता मिटाने में अद्वैतवाद का प्रयोग है, उसी प्रकार एक ही प्रत्यगात्मा के भाववैचित्र्यों का—जो नर्तक आत्मा के अभिनय पात्र हैं अभेद या साधारणीकरण भी रस में है।" इस प्रकार अद्वैयता की साधना ही प्रसाद जी की सम्मति में साहित्य और दर्शन की मुख्य साधना है।

प्रसाद जी ने काव्य के वर्ण्य-विषय की अभिव्यंजना के स्वरूप भेद में, रूप के आवरण में सन्निहित 'आत्मा की अनुभूति की प्रधानता' का प्रमुख रूप में स्वीकार किया है। आत्मानुभूति की जिस प्रधानता के आधार पर, अपने 'काव्य और कला' निबन्ध में प्रसादजी ने महाकवि सूर और तुलसी की वात्सल्य-अभिव्यक्ति का विचार किया है उसी के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है कि प्रसादजी की आत्मानुभूति आत्मा के आनन्दात्मक दर्शन से अभिभूत थी।

प्रसादजी की उपर्युक्त दोनों मान्यताओं के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रसादजी का समग्रकाव्य-विवेचन एवम् काव्य-सृजन आनन्द स्वरूप आत्मा की अनुभूति का भाष्य है और उसका प्रकार-भेद उसी आत्मानुभूति मात्रभेद का परिणाम है। अतः 'कामायनी' से पूर्व के काव्यों में (कविताओं में) प्रसादजी की वह आत्मानुभूति आत्मा के पूर्ण आनन्दात्मक स्वरूप में प्रकट नहीं हो पाई। नाटकों में वह आनन्द मूलक रस-धारा प्रवाहित तो है किन्तु उन नाटकों के नायकों में आत्मविस्तार के द्वारा अद्वैत प्राप्ति की क्षमता नहीं। (क्योंकि वे सम्पूर्ण रूप से ऐतिहासिक पात्र हैं) 'आँसू' (एक भावात्मक खण्ड-काव्य) का प्रारंभिक लौकिक भावोच्छ्वास अन्त में लौकिकता की उच्चतम-जो अलौकिकता को स्पर्श करती है—तक पहुँच जाती है। किन्तु शैव-दर्शन से प्रभावित प्रसादजी समझ पाये थे कि—'करुणा-कलित हृदय में विकल रागनी का बजना' आत्मा की भेद-दृष्टि का कारण है। जब तक भेद-दृष्टि है, दुखः का अनुभव अनिवार्य है। अगर यह भेद-सृष्टि विगलित हो जाय तो आत्मा अपने मूल आनन्द स्वरूप में प्रकट हो सकती है और समग्र विश्व के

साथ अद्वैत की एक ऐसी समरस स्थिति पैदा हो सकती है जहाँ एक मात्र आनंद की ही स्थिति है। अतः आत्मा के पूर्ण-स्वरूप के प्रकाश स्थिति की आत्मानुभूति का प्रवल मंथन प्रारम्भ हुआ। इस प्रवल मंथन की अभिव्यक्ति का वाहन गीत, प्रगीत या खण्ड-काव्य नहीं बन सकता था। उसके लिए चाहिए एक दीर्घकाय प्रबन्ध-काव्य। 'कामायनी' का काव्य-स्वरूप आत्मा के पूर्ण प्रकाश की आत्मनुभूति के प्रवल मंथन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

अब प्रश्न है क्या 'कामायनी' का काव्य-स्वरूप महाकाव्य है?

'आरंभिक पाठ्य काव्य' नामक अपने निबन्ध में प्रसादजी ने लिखा है—

"महाकाव्यों में महत्ता की अत्यन्त आवश्यकता है। महत्ता ही महाकाव्य का प्राण है।" (डा० नगेन्द्र और आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीजी ने इसे औदात्य कहा है) यह महत्ता किसकी? वर्ण्य-वस्तु की? वर्णन-शैली की? उत्तर है नहीं। इन सबका एक सीमा तक महत्व होने पर भी ये तो उसके-महाकाव्य के आनुसंगिक अंग मात्र हैं। निस्संदेह यह महत्ता है मनुष्य-चरित्र की; वह मनुष्य जिसके लिए महर्षि व्यास ने गाया-'न मनुष्यात् श्रेष्ठतर इह वर्त्तते', आचार्य शंकर ने कहा—'अहम् ब्रह्माऽस्मि', संत कबीर ने ललकारा- मैं तो तेरे पास में', और कवीन्द्र रवीन्द्र ने गाया-'सावार उपरे मानुस सत्य ताहार उपरे नाहि।' आत्मवादी प्रसादजी मनुष्य की इसी महत्ता की आत्मानुभूति से अभिभूत थे। प्रसादजी यह मानते हैं कि-"मनुष्य की सत्ता को पूर्ण मानने की प्रेरणा ही भारतीय अवतारवाद की जननी है—" किन्तु भक्ति-संप्रदायों में इसी प्रेरणा के स्थान पर दुःखवादी और रक्षावादी विचारों का प्रधान्य हो गया। परिणामतः रामायण के राम त्राणकर्त्ता, रक्षक भगवान बनकर ही रह गये। राम के आगे मनुष्य-'तू दयालु दीन हौं—की दास्य स्थिति में है। राम मनुष्य का उद्धार तो कर सकते हैं, मनुष्य को ईश्वर नहीं बना सकते। महाभारत के कृष्ण में वह आत्मवादी स्थिति है किन्तु संप्रदाय की छाया में वे भी अधम उद्धारक-'प्रभु मेरे अवगुन चित न धरो'-,तथा अशरण-शरण-श्री कृष्ण शरणं मम'-बनकर ही रह गये। प्रसादजी की दृष्टि से इन दोनों महाकाव्यों में आत्मा के आनन्द-स्वरूप की विवृत्ति की अपेक्षा विवेकवाद की पुष्टि का प्रयास है प्रसादजी लिखते हैं—"दुःखों की अनुभूति से, बुद्धिवाद ने

एक त्राणकारी महान शक्ति का अवतरण किया।—मैं यही कहना चाहता हूँ कि (हिन्दी) काव्य-धारा मानव में राम है या लोकातीत परम शक्ति है इसी के विवेचन में लगी रही। मानव ईश्वर से भिन्न नहीं हैं, यह बोध, यह रसानुभूति विवृत्त नहीं हो सकी। "अतः स्पष्ट है, यह बोध, यह रसानुभूति विवृत्त नहीं हो सकी।"अतः स्पष्ट हैं कि आत्मवादी प्रसादजी मनुष्य के ईश्वर-बोध (रसानुभूति) की विवृत्ति चाहते हैं; वे मनुष्य की इसी महत्ता के संदेशवाहक हैं। इससे बढ़कर मनुष्य की और क्या महत्ता हो सकती है कि वह ईश्वर से भिन्न नहीं है; वह ईश्वर का कृपाकांक्षी नहीं; अपनी आत्मा के मूल-स्वरूप में स्वयं ईश्वर हैं। कामायनी मनुष्य की इस महत्ता (आत्मा के ईश्वर-बोध) का प्रत्याख्यान है जो महाकाव्य का प्राण-तत्व है।

'नाटकों में रस का प्रयोग' नामक अपने निबन्ध में प्रसादजी लिखते हैं हैं—"आत्मा की अनुभूति व्यक्ति और उसके व्यक्ति-वैचित्र्य को लेकर अपनी सृष्टि करती है।" 'मनुष्य अपनी आत्मा के मूल आनन्द स्वरूप में ईश्वर ही है—' की महाकाव्योचित मानवीय महत्ता से अभिभूत प्रसादजी की आत्मानुभूति मनु के चरित्र में अपना निष्कासन पाती हैं। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि मनु ही क्यों? इसका कारण है प्रसादजी की वह आत्मानुभूति जो मनुष्य की ईश्वरीय महत्ता से अभिभूत थी। मनु भारतीय इतिहास के प्रथम पुरुष हैं। प्रसादजी ने 'कामायनी के' आमुख में लिखा है—"मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध इन्हीं के वंशज हैं।" इतना ही नहीं; जलप्लावन-की ऐतिहासिक घटना, व्यक्ति और स्थान भेद तथा देश-भेद के अनुरूप अल्प परिवर्त्तनों के साथ, कई विदेशी ग्रंथों में (ग्रीस में डयुकेलियन, बाईबल में नूह, बैबीलौन में जिसुथ्रास आदि) समान रूप से मिल जाती हैं। अतः कहा जा सकता है कि मनु (डयूकैलियन, नूह, जिसुथ्रास; (जो भी नाम हो) विश्व के ज्ञात इतिहास के आदि पुरुष थे। प्रसादजी की जो महत्तम आत्मानुभूति थी उसके लिए मानव-संस्कृति के आद्य पुरुष मनु ही सबसे अधिक उपयुक्त पात्र थे। अगर प्रसादजी ने भारतीय इतिहास से किसी अन्य पात्र को अपने काव्य का नायक बनाया होता तो वह आदि पुरुष-मनु-के प्रति घोर अन्याय होता। क्योंकि मनुष्य में ईश्वर बनने की जो क्षमता है वह अगर

राम, कृष्ण और बुद्ध में है तो नव-संस्कृति के निर्माता आदि पुरुष-मनु में क्यों नहीं ? अगर काल्पनिक पात्र लेते तो उद्देश्य की महत्ता केवल आदर्श बनकर रह जाती जो प्रसादजी को कतई मान्य नहीं था। अतः मनु के द्वारा औचित्य एवम् ऐतिहासिकता दोनों की रक्षा हुई है।

अब प्रश्न है 'कामायनी' के नायक मनु के चरित्र का। वेदों, ब्राह्मण-ग्रंथों एवम् पुराणों में मनु का जो आख्यान मिलता हैं वह भावपूर्ण प्रसंगों से युक्त होने के साथ-साथ श्रद्धेय भी है। आदि पुरुष मनु के प्रति भारतीय मनीषियों की भावना श्रद्धापूर्ण थी और उन्हें 'श्रद्धादेवो वै मनुः' कहा गया है। जिन मनु को प्रचीन मनीषियों ने श्रद्धादेव कहा उन्हें प्रसादजी ने ईश्वरीय गरिमा से युक्त बताया है। प्रसादजी मनु को श्रद्धादेव (श्रद्ध के पति, आत्म-श्रद्धा युक्त) मानते हुए भी यह भूलना नहीं चाहते कि मनु एक मनुष्य है; ऐसे मनुष्य जो मानव-सहज वासनाओं से युक्त हैं। व्यक्ति की धीरोदात्तता आदर्श भले ही न हो किन्तु एक अति श्रम-साध्य विरल आत्म स्थिति है। जन्म के साथ ही ऐसी स्थिति से युक्त व्यक्ति देव या भगवान भले ही बने, वह मनुष्य नहीं रहता। प्रसाद जी की यथार्थवादी दृष्टि मानव-सहज दुर्बलताओं से युक्त मनुष्य को आत्मश्रद्धा की निजी शक्ति पर ईश्वरीय शक्ति का अधिकारी दिखाना चाहती है; क्योंकि यही प्रसादजी की आत्मानुभूति है। अतः मनु को प्रारंभ से ही सर्वगुण सम्पन्न धीरोदात्त व्यक्ति बताना उन्हें मानवीय चरित्र से दूर करना था। मानव-सहज वासनाओं से लिप्त आत्मा अपनी शक्ति एवम् श्रद्धा के सहारे वासनाओं—चिन्ता, आशा, वासना, कर्म-संघर्ष, ईर्ष्या, बुद्धि का अतिवाद आदि—से क्रमशः मुक्ति पाती हुई अन्त में अपने मूल स्वरूप में आनन्द स्वरूप ईश्वरीय सत्ता का अनुभव कर सके यही मनुष्य की सर्वोत्तम गरिमा है। फिर भी मनु के इस चरित्र-निर्माण के द्वारा प्रसादजी का यह कतई अभिप्रेतार्थ नहीं है कि कोई भी ऐरा गैरा नत्थु खेरा इस स्थिति को प्राप्त कर सकता है। 'कामायनी' के मनु जलप्लावन की भीषण घटना का सामना करनेवाले आत्मशक्तिवान और नये युग के प्रवर्तक आत्मश्रद्धायुक्त व्यक्ति थे; सामान्य व्यक्ति नहीं। ईश्वरीय स्थिति प्राप्त करने के लिए आत्मशक्ति, आत्म-श्रद्धा एवम् आत्म संस्कार अनिवार्य हैं।

(ऐश्वर्य एवम् यौवन से परिपूर्ण होने पर भी जरा, रोग और मरण के परोक्ष दुःखानुभव की कल्पना मात्र से बुद्धत्व के प्रति उन्मुख होनेवाले सिद्धार्थ मनुष्य ही थे और जरा, रोग का साक्षात अनुभव करने पर भी—और मुर्दों को जलाते समय श्मशान वैराग्य धारण करते हुए भी—'तदपि न मुंचति आशा पिण्डम्' वाले हम भी मनुष्य ही हैं किन्तु शक्ति संस्कार एवम् श्रद्धा में पिछड़े हुए।) अतः 'कामायनी' में मनु का पात्र और चरित्र-विधान दोनों प्रसादजी की आत्मानुभूति की सृष्टि है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि 'कामायनी' में मनु का इतना महत्व है तो प्रसाद जी ने अपने काव्य का नामकरण मनु के नाम पर न करके 'कामायनी' क्यों रखा ?

मेरी दृष्टि से इसका कारण प्रसादजी का नारी के प्रति का आदरपूर्ण दृष्टि-कोण तथा अपनी आत्मानुभूति से उद्भूति कथा-सृष्टि-मनु के आख्यान-के प्रति कवि का सचेष्ट चिंतन है। प्रसाद जी नारी को केवल सौन्दर्योपभोग का साधन नहीं मानते। विरह प्रधान भक्ति-युग, वासना प्रधान रीति-युग और यथार्थता प्रधान आधुनिक युग, सभी में नारी के प्रति दृष्टि-कोण प्रायः एकांगी रहा है। प्रसादजी ने 'यथार्थवाद और छायावाद' नामक अपने निबन्ध में लिखा है –"स्त्रियों के संबन्ध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर, मातृत्व से उत्पन्न हुए सब संबन्धों को तुच्छ कर देती हैं।" नारी के प्रति इसी श्रद्धामय दृष्टि-कोण ने अमर नारी चरित्रों का निर्माण किया है जिसका सर्वोत्तम रूप कामायनी-नारी तुम केवल श्रद्धा हो—' में प्रकट हुआ है।

दूसरे घटनाओं या व्यक्तियों के प्रति प्रसादजी की दृष्टि भाववादी-अनुभूतिमयी है क्योंकि घटनाएँ स्थूल और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव में परिणत हो जाती हैं और मनुष्य अपने अल्पकालिक आयु-बन्ध से नश्वर हैं। प्रसादजी का स्पष्ट विश्वास है कि--"सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरंतन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की और पुरुषार्थों की अभिव्यक्ति होती रहती है।" इस रूप में मनुष्य की आत्मश्रद्धा-भावना-मनुष्य से अधिक शाश्वत; अतः अधिक महान है। आत्मश्रद्धाहीन मनुष्य, 'मनुष्यरूपेणमृगाश्चरन्ति,' की उक्ति के अधिकारी हैं। 'कामायनी' में मनु का

ईश्वरत्व इसी श्रद्धा की प्रेरणा का परिणाम है, क्योंकि आत्मा के मूल आनन्द स्वरूप में ईश्वरत्व का बोध अर्थात् आत्मा की विशुद्ध अनुभूति बुद्धि या तर्क का विषय नहीं है-'न अयमात्मा प्रवचनैनलभ्यों न मेधया न बहुना श्रुतेन।' वास्तव में बुद्धि अपने तर्क-जाल में अनेक प्रवाद-प्रपंच खड़ा कर देती है। श्रद्धाविहीन मनु बुद्धि के एकांगी प्रभाव से दिग्भ्रम तथा अहम् पूर्ण व्यक्ति है। अतः मनु से महान है मनु की श्रद्धा। परिणामतया अपनी आत्मानुभूति से मनु के पौराणिक आख्यान के प्रति उन्मुख प्रसादजी चेतना-शक्ति इस आख्यान की रूपकात्मकता-अर्थात् मनु अर्थात् मन, श्रद्धा एवम् इड़ा से संबन्धित के प्रति भी सचेष्ट हैं। वे लिखते हैं—"यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा ही भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।" श्रद्धा भाव रूप में स्त्रीलिंगीय शब्द है; मनु के आख्यान में भी श्रद्धा का उल्लेख है। अतः प्रसादजी ने श्रद्धा के भावरूप से आख्यान की ऐतिहासिक श्रद्धा के समन्वय से सर्वोत्तम नारी स्वरूप का निर्माण किया। इसी श्रद्धा के लिए कामगोत्रजा-कामायनी-शब्द का भी प्रयोग हुआ है। हालाँकि श्रद्धा और कामायनी पर्याय हैं परन्तु अपने शब्द रूप में श्रद्धा भाववाची और कामायनी उसका प्रकृत-गोचर रूप-सा प्रतीत होता है। कामायनी शब्द की कवित्वमय कमनीयता ने प्रसादजी को अधिक आकृष्ट किया है। इसीलिए काव्य में श्रद्धा शब्द का प्रयोग अधिक करने पर भी कवि ने नारी-महत्ता, गरिमा एवम् काव्यमय कमनीयता के कारण ही अपने महाकाव्य का नाम 'कामायनी' रखा है जो सर्वथा उपयुक्त और यथार्थ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य के पूर्णत्व की आत्मानुभूति अपनी महत्ता में स्वतः महाकाव्य की जननी बनी है जिसने अभिव्यक्ति के लिए सुयोग्य वस्तु एवम् पात्रों को भी स्वतः खोज निकाला है। कल्पना के अखण्ड कोष दर्शनशास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित, पुरातत्वादि प्रसादजी की बहुमुखी प्रतिभा को इसी महत्तम अनुभूति का स्पर्श हुआ जिसका स्वाभाविक उद्घोष 'कामायनी' निस्संदेह रूप से एक महाकाव्य है।

———

८

कामायनी का 'लज्जा' सर्ग

श्री हरिवल्लभ लाल

लज्जा नारियों की वह स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जो रीति प्रेरित होती है। प्रेमोदय के पूर्व निर्विकार मन से किसी प्रकार के भाव-गोपन की आवश्यकता नहीं होती, पर जैसे ही रीति का प्रादुर्भाव होता है कि नारी एक प्रकार का संकोच अनुभव करने लगती है और इसकी इसी आत्म-संकोचशीलता का दूसरा नाम 'लज्जा' है। स्वरति का छिपाव नारी की प्राकृतिक देन है, सामाजिक नहीं। 'मैकडूगल' के अनुसार चाहे आत्म-हीनता की मनोवृत्ति (Self-ablenegation) इसका उत्स हो, चाहे और कुछ; पर जगन्नियन्ता ने इस वृत्ति का आधिक्य स्त्री समाज को ही विरासत में दिया है। एक महाशय लिखते हैं :—'यह लज्जानुभव सामान्यतः जैसे पुरुषों में वैसे स्त्रियों में पाया जाना चाहिए। किन्तु आज तक का समाज पुरुष-प्रधान रहा है, अतएव पुरुषों के सामने अपनी तुच्छता छिपाने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे स्त्रियों में वद्धमूल हो गई और लज्जा के अस्तित्व की एकान्त रक्षा का भार उन्हीं के दुर्बल कंधों पर पड़ा—

हमारा विश्वास है कि स्त्री और पुरुष, दोनों की प्रवृत्यात्मक बनावट ही कुछ वैशिष्ट्य युक्त है, जिसके कारण एक स्वभाव से ही कुछ लज्जालु तथा दूसरा कुछ ढीठ हुआ करते हैं। यदि हम थोड़ी देर के लिए यह मान लें कि नारियों का लज्जानुभाव पुरुष-प्रधान समाज-प्रदत्त वरदान अथवा अभिशाप है, प्राकृतिक विशेषता नहीं, तो गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर अपनी धारणा की प्रतिकूलता स्पष्ट देखी जा सकती है।

पशुओं में न तो कोई सामाजिक शृंखला है, न पुरुष-प्रधानता। उसके

निबंन्ध-विलास में किसी ओर से किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं। फिर भी हम प्रणय निवेदन की आतुरता पुरुष-पशु की ओर से ही देखते है और कामातुरा स्त्री-पशु कुछ न कुछ अपनी ओर से निषेध-सूचक सम्मति देती ही है। यह निषेध उसकी लज्जा ही के कारण है तथा वह भी अपने रति-भाव के छिपाव का प्रयास करती है अतएव सत्य तो यह है कि नारी का संकोच-शीलता अथवा लज्जा, जो पशु समाज में भी देखी जाती है उसकी स्वाभाविक वृत्ति है, सामाजिक नहीं। हाँ, सामाजिक पुरुष-प्रधानता ने इसके इस गुण को अत्यधिक उभार में लाया है। समाज की बागडोर पुरुषों के हाथ में रहने के कारण सुविधानुसार उसकी दिठाई बढ़ गई तथा लज्जा का दुर्वह बोझ, जो पहले हलका था, नारियों के दुर्बल कंधों पर आदिम-युग में भी इसकी न्यूनाधिकता वर्तमान थी, इसमें संदेह नहीं।

इस लज्जा का अत्यन्त मनोवैज्ञानिक, मार्मिक एवं काव्यात्मक वर्णन हम 'प्रसाद' जी की 'कामायनी' में देखते हैं। छायावाद युग की पूर्ण प्रौढ़ता ग्रहण किए हुए रूपक और अन्योक्ति की सौन्दर्य छटा युक्त प्रस्तुत पुस्तक का लज्जा सर्ग सरसता, सजीवता एवं काव्यमय मनोविश्लेषण के लिए सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अपना उच्चतर स्थान रखता है। इसलिए अनेक विद्वानों की दृष्टि में इसका महत्त्व है। सर्ग के अंतर्गत सिर्फ लज्जा ही नहीं, सौन्दर्य, यौवन तथा भारतीयनारी-आदर्श पर भी दृष्टिपात हुआ है। इनमें कुछ की विशदता तो पाठक को खटक जाती, यदि वर्णन-विषय की मनोहारिता तथा रसात्मकता की ओर कवि का ध्यान नहीं रहता। लम्बा वर्णन चाहे महाकाव्य में हो, चाहे अन्यत्र, पर इतनी सावधानी तो कवि को वरतनी ही होती है कि कहीं उसका विषय-निरूपण शुष्क, नीरस तथा कोरा तथ्यात्मक न हो जाय, जिससे पाठक का मन उब उठे। इस दृष्टिकोण से महाकवि प्रसाद की सिद्ध-हस्तता एक स्वर से स्वीकार होनी चाहिए।

कवि ने इस मनोवृत्ति के चित्रण में चमत्कार से काम लिया है। यदि वे चाहते तो श्रद्धा के भाव परिवर्तन द्वारा भी इसका निष्पन्न, विकास तथा प्रभाव अंकित कर सकते थे पर उन्होंने तो इसे पात्रात्मकता का स्वरूप प्रदान

कर इसके काव्यात्मक सौन्दर्य की वृद्धि तथा कथोपकथन द्वारा वृत्तात्मक विश्लेषण कर इसकी दुर्बोधता को सरल कर दिया है। बीच-बीच में कल्पना की सूक्ष्मता तथा अप्रस्तुत-विधान का साम्य तो जैसे रह रह कर यह घोषित कर रहा है कि 'प्रसाद' जी अपने आप में अकेले हैं। देखिए, लज्जा के आगमन पर 'श्रद्धा' चौंक उठती है तथा अचंभित होकर पूछती है :—

'नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल वाहें फैलाए सी
आलिंगन का जादू पढ़ती ?;

जिस प्रकार निस्तब्ध अर्ध रात्रि में लता बढ़ जाती है; ठीक उसी प्रकार एकान्त एवं शांत वातावरण में श्रद्धा को देख कर लज्जा इसकी ओर बढ़ रहा है। अभी-अभी श्रद्धा पहले-पहल मनु के प्रेम मय छेड़-छाड़ से निवट कर एकान्त में चुप चाप वैठी है। यह जितना इस विषय पर सोचती है, उतना ही मन गुदगुदाता है और उतना ही मन लज्जा के बोझ से दबा जाता है। समागम के समय तो लज्जा, भय, उत्सुकता, आकांक्षा आदि अनेक प्रवृत्तियाँ एक ही बार उभर आई थीं, जिस कारण लज्जा की उतनी अनुभूति नहीं हुई थी, पर अभी इस एकान्त में अन्य प्रवृत्तियाँ दब गई हैं। इसलिए लज्जा का भार अधिक बढ़ गया है। सचमुच नारी जब पुरुष के प्रथम समागम के पश्चात् एकान्त में वैठ कर अपनी मधु-क्रीड़ा के प्रसंग पर विचार करती है, तो जैसे वह लाज से आप में सिमिट जाती है। समागम के समय जितना लज्जा का अनुभव नहीं हो पाता उससे कहीं अधिक तद्पश्चात् होता है। अतः कवि ने जो श्रद्धा की इस स्थिति को चित्रण के लिए 'नीरव निशीथ की लतिका का बढ़ना' की कल्पना की है, अवश्य ही प्रसंशनीय है।

मोहनी मन्त्र का इतना अधिक प्रभाव है कि जिस किसी को आकर्षित करने के लिए उसका उच्चारण किया जाय, अवश्य ही वह वरवश ही उसकी ओर खिंच आएगा तथा उसके वाहुपास में आवद्ध होकर उसका आलिंगन करेगा। श्रद्धा भी यह अनुभव करती है कि लज्जा की छाया प्रतिभा अपना

कोमल बाहुपास फैलाए मोहनी मन्त्र का जाप करती इसकी ओर अग्रसर हो रही है और यह मन्त्र-मुग्ध होकर आलिगन निमित्त उसकी ओर बढ़ती जा रही है। यहाँ इस स्थिति में नारी को लज्जानुभव की अनिवार्यता तथा इसे अनुभव के अनुपम सुख की ओर कवि का संकेत है, जो अत्यन्त समीचीन प्रतीत होता है।

लज्जानुभव में रोमांच के कारण शरीर कंटकित हो जाता है, जिसकी उपमा कवि लोग कदंब के फूल से देते आये हैं। श्री जानकीवल्लभ 'शास्त्री' की नायिका भी अपनी रति-प्रेरित मनोदिशा के अभिव्यक्ति-सूचक अनुभाव (रोमांच) के लिए कदंब के फूल का उपमान प्रस्तुत करती है—'अंग अंग फूले कदंब सम सांझ झकोरे भूले'। इसी चित्र (रोमांच) को अंकित करने के लिए कवि ने लज्जा की छाया-प्रतिमा से श्रद्धा के गले में कदंब की माला पहनवाया है तथा इसके प्रभाव के कारण मन के झुकाव को फल-भार के आधिक्य से 'वृक्ष की डाली की झुकान' सदृश कहा है :—

'पुलकित कदम्ब की माला सी
पहना देती उर अंतर में,
झुक जाती है मन की डाली
अपनी फल भरता के डर में।'

यौवन के प्रारम्भ में प्रेम की पिपासा जागृत होती है। अनेक प्रकार की अनुराग मिश्रित अभिलाषा हृदय में उठ खड़ी होती है। प्रेयसी मधुर सुख की कल्पना कर खिल उठती है तथा अपने प्रियतम के सहवास में अनेक क्रीडा-कौतुक की कल्पना करती है। मन इस सुख के स्वागतार्थ ललक उठता है तथा वह अपने जीवन भर की एकत्रित भावनाओं की विभूति से दूरागत प्रियतम का सत्कार करने के लिए आतुर हो उठती है, पर लज्जा इस मनोकामना को फलीभूत नहीं होने देती। वह अचानक इसके जीवन में प्रवेश कर जैसा इस सुख को छीन लेती है। देखिए, रूपक का निर्वाह करते हुए प्रसाद जी ने किस मार्मिक ढंग से इस भाव की सौन्दर्यमयता को चित्रांकित किया है :—

'किरणों का रज्जु समेट लिया
जिसका आलम्बन ले चढ़ती;
रस के निर्झर में धंस कर मैं
आनंद शिखर के प्रति बढ़ती ?'

रात-प्रेरित नायिका अपने-प्रेम पात्र का स्पर्श करना चाहती है, पर जैसे ही वह अपना हाथ आगे की ओर बढ़ाने की आकांक्षा करती है कि मन में एक प्रकार का झिझक पैदा होता है। उसकी आँखें प्रियतम के सौन्दर्य-पान निमित्त मचल उठती है, पर लज्जा के कारण वह सीधे तरीके से देख नहीं सकती। वह अपने प्रियतम के साथ प्रेम का मधुर वार्तालाप करना चाहती है, पर उसकी वाणी जैसे अधरों तक आकर ही रुक जाती है। श्रद्धा का निम्न अनुभव कितना स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है:—

'छूने में हिचक देखने में
पलकें आँखों पर झुकती हैं;
कलरव परिहास भरी गूंजे
अधरों तक आकर रुकती हैं।'

लज्जा का एक मात्र तात्पर्य है मन के प्रेम-भाव को छिपाना। नारी इसलिए इस भाव को गुप्त रखना चाहती है कि कोई उसके मन की बात को ताड़ न ले। यदि उसके मन में प्रेम प्रकट हो जाय, तो निश्चय ही वह समाज के सामने उपहासास्पद सिद्ध होगी। पर जितना ही वह इस भाव के छिपाव का प्रयत्न करती है, उतना ही वह सशंकित होती जाती है कि लोग उसके मन की गुत्थी को परख कर उसी का उपहास कर रहे हैं:—

'मैं सिमट रही सी अपने में
परिहास गीत सुन पाती हूँ।'

सचमुच प्रसाद जी ने 'लज्जा' को हृदय की परवशता' 'या पकड़' कह कर जैसे इसकी परिभाषा पर अंतिम मुहर लगा दी है कि इससे स्पष्ट एवं वास्तविक परिभाषा अब कोई दे ही नहीं सकता:—

तुम कौन हृदय की परवशता
सारी स्वतन्त्रता छीन रही;
× × × ×
मैं एक पकड़ हूँ जो कहती
ठहरो कुछ सोच विचार करो ।

पर लज्जा का वह आवरण सघन नहीं, जिसमें नारी-हृदय की पहचान ही नहीं हो सके। यह तो हल्का है, जिसके परिवेष्ठन में यह केवल नग्न रूप में नहीं देखी जा सकती। जिस प्रकार धुँधले प्रकाश में किसी वस्तु का बोध स्पष्ट रूप में नहीं होता है; ठीक उसी प्रकार लज्जा में लिपटा हुआ नारी-हृदय का बोध निरावृत रूप में नहीं आवृत रूप में होता है, जिसके कारण उसके सौन्दर्य की माधुर्य मिश्रित-मादकता द्विगुणित हो जाती है :—

यह अंचल कितना हल्का-सा
कितने सौरभ से सना हुआ।'

लज्जा ही के कारण नारी रहस्यमय प्रतीत होती है, पर यह रहस्यमयता उतना निगूढ़ नहीं कि इसका अर्थोद्घाटन हो सके। नारी हृदय के पारखी रसिक-प्रेमी तो अत्यन्त सरलता के साथ इस गुत्थी को सुलझाते हुए अंतर्निहित भाव को ढूँढ़ लेते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि जिस प्रकार काले अक्षरों में अंकित भाव अपढ़ लोग को भ्रम में डाल देता है, अर्थात् मूर्खों के समक्ष यह आश्चर्य चकित कर देने वाला एक रहस्य मात्र रह जाता है; ठीक उसी प्रकार सुन्दरियों के काले भौंहों की भाषा का रहस्यात्मक अर्थ मर्महीन एवं अनाड़ी मनुष्य के समक्ष नहीं खुलता, उसे भ्रम में डाल देता है—

भाषा बन भौंहों की काली
रेखा-सी भ्रम में पड़ी रही।'

तो क्या नारा के लिए लज्जा अभिशाप है ? जो इसके मन वांछित फल की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होती है ? नहीं, यह अभिशाप नहीं, वरदान है ? उसके नारीत्व की रक्षा का भार इसी लज्जा के दुर्बल-कंधों पर डाला गया है और इसीलिए श्रद्धा कहती है :—

वरदान सदृश हो डाल रही
नीली किरणों से बुना हुआ;
यह अंचल कितना हलका-सा
कितने सौरभ से सना हुआ।'

नारी का अनुपम ऐश्वर्य उसका सौंदर्य। सौन्दर्य ही के कारण वह पुरुष के आकर्षण का केन्द्र बिन्दु बनती है तथा समाज में समादृत होती है कितनी भी गुणवती नारी क्यों न हो, यदि वह कुरूप है तो निश्चिय ही वह प्रथम कक्षा की रमणियों में स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। लज्जा इसी महत्वपूर्ण सौन्दर्य की संरक्षिका है —

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली।'

लज्जा ही के कारण तो रमणियों के कपोलों में लालिमा, दृगों में अंजन की कालिमा तथा मन में एक प्रकार की आकर्षक वक्रता पैदा होती है, जो पुरुष के मन के खिचाव में तीव्रता तथा नारी में पुरुष-हृदय के अन्दर कसक-टीस एवं भावान्दोलन उठाने वाली निषेधात्मकता उत्पन्न करती है और यही उसका वास्तविक सौन्दर्य है। 'लज्जा' स्वयम् अपना परिचयात्मक बोध कराते हुए श्रद्धा से कहती है—

लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन-सी लगती,
कुंचित अलकों-सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती,

सचमुच लज्जा ही नारी का आभूषण है। संस्कृत में भी कहा गया है— 'नारीणां भूषणं लज्जा।' यह इसके बाह्य सौन्दर्य को चमत्कृत कर देने वाला आभूषण तो है ही नारी की गौरव-गरिमा अथवा शालीनता की प्रदायिका है। नारी का गौरव उसकी सलज्जता में ही है, उसकी निर्लज्जता में नहीं। यह उसकी वासनात्मक उद्मता, नग्न विलासिता, स्वाभाविक उच्छृंखलता तथा घृणोत्पादक निर्लज्जता पर एक प्रतिबन्धात्मक अवगुंठन डाल कर उसके

बाह्य एवम् आंतर दोनों रूप को सम्मोहक बना देती है। यही इसकी अमूल्य निधि है। इसको त्यक्त कर कभी भी नारी, कल्याण की अधिकारिणी नहीं हो सकती। इसीलिए कवि सम्राट रवीन्द्र नाथ 'ठाकुर' की नायिका अपने प्रियतम को अपना सर्वस्व-समर्पण करते हुये भी लज्जा मात्र का दान नहीं करना चाहती—

शुन बन्धु शुन तवे सकल तोमार हवे।
केवल शरम थाक आमारि—'

प्रसंग वश कवि ने जो नारी स्वाभाविक मुद्रा की चित्रात्मकता उपस्थिति की है, अत्यंत अनुभवजन्य एवम् वैशिष्ठ्य युक्त प्रतीत होती है—

'वैसी ही माया में लिपटी,
अधरों पर उँगली धरे हुए
× × × ×
सिर नीचा कर हो गूँथ रही।
माला जिससे मधुर धार ढरे॥

अधरों पर उँगली धरना तथा 'सिर नीचा कर माला गूँथना' नारी का एक विशेष लक्षण है, जो सर्वविदित है। इस मुद्रा में इसके सौन्दर्य की मादकता कितनी बढ़ जाती है। यह नारी सौंदर्य-विशेषज्ञ नहीं, सर्व-साधारण के मन की परख के भी सन्निकट है। निस्संदेह प्रसाद जी ने नारी के समीपस्थ होकर इसे परखा था।

लज्जा, यौवन, सौंदर्य आदि सूक्ष्म भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए जो कवि ने प्रकृति के रम्य भंडार से भाव-साम्य तथा आकार साम्य के आधार पर उपादान एकत्रित किया है, भारतीय साहित्य की बहुमूल्य सम्पति कही जा सकती है। छायावादी परिधान-सुसज्जित (विशेषतः मूर्त के लिए अमूर्त तथा अमूर्त के लिए मूर्त की योजना) इस सर्ग की बोध-गम्यता एवं स्वस्थ शृंगार रसोद्रेक शीलता में शायद किसी को आपत्ति नहीं। निम्न पंक्तियों में जो प्रकृति के रूप साम्य के आधार पर सौंदर्य के स्वस्थ शृंगारिक-स्वरूप की अवतारणा की गई है, रसिक हृदय के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

नयनों की नीलम की घाटी।
जिस रस घन से छा जाती हो;
वह कौंध की जिससे भीतर की।
शीतलता ठंडक पाती हो।'

आँखों के लिए 'नीलम की घाटी' उसकी मादकता एवं रसात्मकता के लिए 'रसघन' (जल से भरा हुआ बादल) तथा सौंदर्य के चमत्कार-प्रजनित-विस्मय-विमुग्धकारिता के लिए 'कौंध' (बिजली) उपमानों में रूप साम्य तथा लक्षण साम्य तो है ही, पर इससे जो सौंदर्य के भव्य स्वरूप की रेखा मनः पटल पर खिच जाती है, सो क्या कम महत्व की बात है ? जल युक्त बादल में जब बिजली चमक उठती है, तो निश्चय ही आंखों के सामने चकाचौंध पैदा हो जाती है। आँख चौंधिया जाने के कारण कुछ भी नहीं सूझता तथा मनुष्य हतचेत होकर शिथिल हो जाता है, पर उसी चौंधिया डालने वाले प्रखर-प्रकाश के अन्तर में जो जल की शीतलता छिपी हुई है जो अत्यंत कल्याण प्रद एवं सुखद हैं। उसी प्रकार रमणीय नेत्र से भी जब सौंदर्य की मादकता छलक उठती है, तो उन्माद के कारण पुरुष संयमहीन तथा अगतिशील हो जाता है, पर उस सौंदर्य की मादकता के अन्दर प्रेम की शीतल छाया भी है, जो इसकी असंयतता का नियमन कर कल्याणकारी कर्त्तव्य, प्रगतिशीलता की स्फूर्ति एवं प्रेरणा भरती है।

सौंदर्य बोध के सम्बन्ध में प्रसाद जी भी वस्तुवादी ही प्रतीत होते हैं, पर कल्पना की सूक्ष्मता एवं रम्यता सर्वत्र आदरणीय एवं प्रशंसनीय है—

हो चकित निकल आई सहसा,
जो अपने प्राची के घर से;
उस नवल चन्द्रिका से बिछले,
जो मानस की लहरों पर से।'

कहीं-कहीं तो नारी मनोवृत्ति पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है—

'पर मन भी क्यों इतना ढीला,
अपने ही होता जाता है;

घन-श्याम खंड-सी आँखों में,
क्यों सहसा जल-भर आता है।'
× × × ×
मैं जभी तोलने का करती,
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।'
भुजलता फँसा कर नरतरु से,
झूले सी झोंके खाती हूँ—'

प्रसाद जी का नारी-आदर्श सम्बन्धी दृष्टि कोण विचारणीय है। उन्होंने नारी को प्रेम का प्रतिबिम्ब माना है, जिसके अन्दर त्याग, सेवा, आत्म-विश्वास, निश्छल-प्रेम, सारल्य आदि कूट-कूट कर भरे हुए हैं। त्याग की प्रति मूर्ति यह नारी जब पुरुष से प्रेम करती है, तो अपने अटल विश्वास के साथ निःस्वार्थ रूप से पुरुष के चरणों पर आत्म समर्पण कर देती है। देखिए श्रद्धा का निःस्वार्थ त्याग—

इस अर्पण में कुछ और नहीं,
केवल उत्सर्ग छलकता है।'
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ—
इतना ही सरल झलकता—'

गार्हस्थ्य जीवन की कल्याणमयता स्त्री और पुरुष की स्पर्द्धा में नहीं, दोनों की एकातानता में है और यह तभी सम्भव है, जब स्त्री-पुरुष के साथ प्रतियोगिता के क्षेत्र में नहीं उतर कर पुरुषाश्रय की शीतल छाया में ही संतोषप्रद-जीवन व्यतीत करे। श्रद्धा की निम्नपंक्तियां इसी सत्य की घोषणा कर रही हैं—

चुपचाप पड़ी रहने की क्यों,
ममता जगती है माया में।
× × ×
चाहती नहीं जागरण कभी,
सपने की इस सुघराई में।

पारिवारिक सुख एवं शांति-प्रद जीवन के लिए अपनी त्यागमयता के साथ स्त्री को पुरुष से संधि करनी होगी। इस संधि निर्वाह के लिए इसे अपनी स्वेच्छाचारिता का अंत कर देना होगा। यह अवस्था अवश्य ही इसके लिए अत्यधिक कष्ट प्रद होगी। पर इसे तो सहनशीलता की सजीव प्रतिमा बनानी ही पड़ेगी। स्मरण रहे कि यह संधि-पत्र लौह लेखिनी से नहीं स्मित रेखा से लिखनी होगी अर्थात् वह जो कुछ भी करेगी बाध्य होकर नहीं, सहर्ष एवं स्वेच्छा से करेगी।

आँसू से भीगे अँचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा।
तुमको अपनी स्मित रेखा से,
यह संधि पत्र लिखना होगा।

उपर्युक्त अवतरणों पर विचार करने से स्पष्ट पता चलता है कि कवि ने अपनी नारी-आदर्श विषयक मान्यता को भारतीय दृष्टिकोण के सन्निकट रखा है, पर ऐसा कहना अन्याय होगा कि उनकी नारी पूर्णतः अबला है, जो पग-पग पर अपनी निरीहता की शृंखला में जकड़ी, पुरुषों की मुखापेक्षिणी है। कवि कल्पित नारी, पुरुष के साथ संधि करती है और इस संधि में अपना महान् से महान् त्याग करती है, पर अपने अस्तित्व को नहीं खोती है और न अपने जीवन की श्रमशीलता को ही विनष्ट होने देती है।

यह संधि छाया-पथ की तारक द्युति सदृश है। जिस प्रकार छाया-पथ की तारिकायें अपने प्रकाश की मिलावट के कारण अभिन्न-सी प्रतीत होती है, पर सभी अपने व्यक्तित्व को बनाए पृथक-पृथक हैं एक दूसरे से भिन्न ; ठीक उसी प्रकार स्त्री और पुरुष की भी यह संधि है, जिसमें भाव विचार एवम् आदर्श का साम्य तो है, पर दोनों के व्यक्तित्व पृथक्-पृथक् हैं, एक दूसरे में विलीन नहीं हो पाया है। दूसरी बात यह कि नारी अपनी कोमलता और सरलता के साथ श्रमशील जीवन व्यतीत करना चाहती है, वह किसी की मुखापेक्षिणी बन कर जीना श्रेयस्कर नहीं समझती। देखिये श्रद्धा कहती है:—

छाया पथ में तारक द्युतिसी।'
झिलमिल करने की मधुलीला

अभिनय करती क्यों इस मन में
कोमल निरीहता श्रमशीला'

इस प्रकार 'प्रसाद' ने आधुनिकाओं को भी यह कहने का अवसर नहीं दिया कि उनका यह नारी आदर्श इस युग में विशेष महत्त्व का नहीं अथवा उन्होंने नारी के अधिकारों का अपहरण कर पुरुष प्रधान समाज की स्वार्थपरता को पनपने में सहयोग दिया है। हाँ, नारी स्वातन्त्र्य के नाम पर उच्छृंखल एवं असंबद्ध जीवन व्यतीत करने के पक्षपातियों के लिए यह जीवन विशेष महत्व का नहीं; व्यंग्य की वस्तु भी हो सकती है।

जो कुछ भी हो, यदि प्रतिक्रियात्मकता एवं एकांगी चिन्तन से पूर्ण पृथक् हो कर सामाजिक, पारिवारिक एवं वैयक्तिक (स्त्री और पुरुष दोनों) शुभ कामना की पृष्ठि-भूमि को दृष्टिपथ पर रखते हुए कवि की निम्न पंक्तियों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाय, तो निश्चय ही ये अपनी उपादेयता के लिए, स्तुत्य प्रमाणित होंगी और नारी के प्रति यह पूज्य भाव न तो इसकी परतंत्रता की स्वर्ण शृंखला समझी जायेगी और न आधुनिक-युग के किसी विकास में बाधक—

नारी तुम केवल श्रद्धा हो।'
विश्वास रजतनग पग तल में—
पीयूष स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में—,

— ———

६

कामायनी का भाव पक्ष

प्रो० एस० टी० नरसिंहाचारी एम० ए०

कामायनी मनु और श्रद्धा को लेकर चलने वाला प्रबन्ध काव्य है। इसलिए कथा सूत्र मिलाने के लिए वर्णन की अपेक्षा है। मार्मिक स्थलों पर भाव विस्तार है हो, वर्णनांश को काव्य सरसता के लिए विशेष उल्लेखनीय है। अलंकार शास्त्र में रस दृष्टि से भाव की प्रधानता न मिली हो पर वस्तु व्यंजना को बिलकुल नहीं छोड़ दिया। कथा वर्णन नीरस प्रक्कथन narration मात्र नहीं है, सर्वत्र औचित्य, गांभीर्य और अर्थ गौरव पर ध्यान रखा गया है। जिस महान आदर्श को दृष्टि में रख कर कामायनी की रचना हुई उसे देखते हुए यह सर्वथा उचित ही है। इसमें विषय, पात्र और परिस्थिति के अनुसार ही वर्णन हुआ है। मन की गहराई में जाकर लेखक ने मानव-स्वभाव-परिशीलन किया। संक्षिप्त और आवश्यक बातें ही कहते हुए शब्दों की अर्थ व्यंजना पर विशेष दृष्टि रखी गई है। इस तरह कामायनी के स्वर Tone में ही एक उच्चता आ गई है जिसे हम भव्यता Subtimity कह सकते हैं। मिल्टन के समान आदयंत यह भव्यता हिन्दी में 'मानस' को छोड़कर दूसरी रचना में होने की कल्पना ही नहीं कर सकते। वहाँ भी घरेलू झगड़ों में और आरण्यक प्रसंगों में तुलसी सामान्य धरातल पर उतर आते हैं। कामायनी के आरंभिक अंश को ही लें। मनु चिंताकातर अवश्य हैं यह कहने का ढंग कितना भव्य है—

> हिमगिर के उत्तुंग शिखर पर
>
> बैठ शिला की शीतल छाँह,
>
> एक पुरुष, भीगे नयनों से,
>
> देख रहा था प्रलय प्रवाह!

दूर-दूर तक विस्तृत था हिम,
स्तब्ध उसी के हृदय समान ;
नीरवता-सी शिला चरण से,
टकराता फिरता पवमान ।
अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ,
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार ;
स्फीत शिरायें, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिनमें संचार ।।

परिस्थिति, प्रकृति और पुरुष की सारूपता है। प्रलय की भयंकरता, हिमालय की उच्चताओं उसी के समान वीर्यवान मनु। परिस्थितियों के फेर में तत्काल विह्वल होकर भी मनु मे अहं की इतनी शक्ति है कि वे हार मान कर नहीं बैठते, दंभ के साथ इड़ा की सहायता से सृष्टि रचना में लग जाते हैं। Satan की यह अदम्य प्रवृत्ति मनु में भी है। कथा सूत्र स्थापन में भी हर एक दृश्य की विशेष सार्थकता है। इस सिलसिले में अनेक विषयों का वर्णन हो गया है। रमणीयार्थ प्रतिपादक ने छोटे-छोटे उच्चकोटि के काव्य ही हैं।

भाव की दृष्टि से प्रसाद जी प्रेम, प्रकृति और दर्शन के कवि हैं। इन तीनों का चरम विकास और उत्कर्ष कामायनी में आकर ही हुआ है। जीवन के सामान्य धरातल पर प्रेम की प्रधानता और ऊँचे धरातल पर दर्शन की मानी गई है। 'आँसू' में प्रेम का आकर्षण जीवन दृष्टि से सीमित हैं; अन्त में सुख-दुख का समझौता और विश्व की कल्याण कामना, प्रेम की मन स्थिति में भाव-विकास का परिणाम मात्र है। इस लौकिक विरह काव्य से 'लहर' में जीवन विस्तार देखते हैं। यह जीवन का प्रेम है, जीवन के सुख दुख के गीत हैं। लेकिन 'लहर' में चंचलता है, आदर्श की स्थिरता पर लेखक नहीं पहुँच सका। सुख-दुख की लहरों में भटकता फिरा। कामायनी में ही प्रसाद जी प्रेम के साथ श्रद्धा के संयोग से प्रेम को वह आदर्श स्वरूप दे सके। प्रेम की कोमलता में श्रद्धा से आत्म-समर्पण की प्रवृत्ति भी आ गई।

कामायनी में भी रूप का वह पहले का सा-आकर्षक है, केवल प्रेम की मदकता और विरह की बेदना के स्थान में—

समर्पण लो सेवा का सार,
सजल संसृति का यह पतवार।
दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास ॥

आलंबन विभाव के सौन्दर्य वर्णन भी कामायनी में निखर आये हैं। मनु और कामायनी से प्रथम दर्शन में सौन्दर्य की प्रखर दीप्ति की छटा और सुकुमार कोमलता देखने योग्य है—

नील परिधान बीच सुकमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।
कुसुम कानन अंचल में मंद,
पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर,
खड़ा हो ले मधु का आधार।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र,
नवल मधु राका मन की साध;
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिंब,
मधुरिमा खेला सदृश अबाध!

इसके अतिरिक्त लज्जा प्रसंग में सौदर्य्य की प्राणमयी धारा, मंगल-कुंकुभ का गौरव-गर्व, गोधूलि की शान्त ममता और मध्याह्न की प्रखर तीक्ष्णता, चकित नवल चन्द्रिका की विस्मयका ही नित्य नवीन रमणीयता का जो वर्णन हुआ वह हिन्दी साहित्य में अपूर्व वस्तु है। इस सौन्दर्य वर्णन में प्रकृति की सारी सुषमा एकत्रित की गई है। इस सौंदर्य और प्रेम के आकर्षण से मनु के मन में कामना उदित होती है। मनु कहते हैं, मुझे ऐसा लगता है जैसे शीतल मन्द पवन की तरह किसी ने मेरा स्पर्श कर लिया हो जिससे

मेरी आत्म चेतना जाती रही है, रोमांच हो रहा है, आँखें वन्द हो रही हैं और झपकी सी आ रही है। मुझे ऐसा लगता है जैसे लज्जा शीला नायिका ने विभ्रम से घूँघट निकाल लिया हो जो एवं छिपने की चेष्टा करती है किन्तु फिर भी पाछे से आकर मुझ से आँख-मिचौनी का खेल-खेल रही है। इस प्रकार प्रेम के शारीरिक अनुभावों का वर्णन हुआ है।

मनु के प्रेम में मनोविकार और उद्वेग का संचार देखते हैं। कामना वासनाग्रस्त होकर पंकिल हो जाती है। पर कामायनी में श्रद्धायुत स्वच्छ धारा ही वहती है। यह स्वच्छता वाद को कामायनी के विरह वर्णन में भी देख सकते हैं। विरह की आह उसमें अवश्य है, साथ ही श्रद्धा का संयम। 'जीवन में सुख अधिक या कि दुख, मंदाकिन कुछ बोलोगी' पूछने वाली इस सरला विरहणी का रूप कुछ न्यारा ही है। परम्परा की अत्युक्ति इसमें बिलकुल नहीं है। श्रद्धा युत होने से ही जीवन की यह स्वाभाविकता देखते हैं। विरहिणी की गोद में कुमार को बंठा कर उसका सहरा देकर, 'प्रसाद जी ने प्रेम की परिणति वात्सल्य के कल्याणी रूप में दिखाया—'प्रजा यैं गृह् मे धनां।'

सौन्दर्य और प्रेम के आकर्षण के मूल में जीवन का उल्लास है। यही बात प्रकृति वर्णनों के सम्बन्ध में भी घटती है। एक तरह से पुरुष और प्रकृति इतना हिल-मिल गये हैं कि दोनों को अलग करके नहीं देख सकते। आनन्द में दोलित मन ने प्रकृति की सुषमा को विशेष भाव से देखा। प्रकृति को जो चेतनता प्रदान की गई है उसकी सार्थकता इसी आनन्दमय फुल्लता में है। प्रेम-सौंदर्य और प्रकृति के प्रति इस तीव्र आकर्षण में विलासी ऐन्द्रिकता है। कामायनी में विराट सौन्दर्य के भी जो वर्णन हुए हैं उनसे मेरी इस बात की पुष्टि होती है बात केवल इतनी ही है कि कुछ प्रकृति के संसर्ग में स्पर्श सुख अनुभव करते हैं तो अन्य कुछ अन्तर में प्रविष्ट होकर मानसिक पक्ष का उद्घाटन करते हैं। अंग्रेजी महाकवि कीट्स और शैली के प्रकृति वर्णन में यही अन्तर है। मानव-जीवन के क्षेत्र में यही बात देखी जाती है विद्यापति और सूरदास क सौंदर्य वर्णन में एक ने वाह्य सौन्दर्य वर्णन किया और दूसरे ने आंतरिक।

कामायनी में प्रकृति वर्णन की विविधता है। कामसर्ग में मानव जीवन

से मिलाकर वसंत प्रकृति का सुन्दर वर्णन हुआ है। 'श्रद्धा' में कामायनी का वर्णन करते लेखक ने प्रकृति वैभव की सारी सामग्री का स्वेच्छा से उपयोग किया। प्रभात-संध्या-रजनी, ज्योत्स्ना, हिमालय की वनस्पति का रूप उनका श्वेत श्याम, रजत-सभर्गभ रंग, प्रभा-दीप्ति, हँसी-मादकता के सजीव चित्र स्थान स्थान पर हैं—

उषा सुनहले तीर बरसती,
जय लक्ष्मी-सी उदित हुई।
बर्षा बीती, हुआ सृष्टि में,
शरद विकास नये सिर से।
नव कोमल आलोक बिखरता,
हिम संसृति पर भर अनुराग।
क्षित सरोज पर कीड़ा करता,
जैसे मधुमय पिंग पराग॥

इस सुन्दरता के विरोध में प्रलय का वर्णन है। प्रलय का इतना सजीव दृश्य उपस्थित करना कोई सरल काम नहीं है। जलप्लावन जैसे के लिए जिस विराट कल्पना की आवश्यकता है वह विरले महाकवियों की वस्तु है। प्रलय की भंयकर विनाशकारी व्यापकता को अंकन में प्रसाद जी पूर्ण सफल हुए।

उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ,
कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रही फेन उगलती,
फन फैलाये व्यालों सी।
धँसती धरा धधकती ज्वाला,
ज्वाला मुखियों के निश्वास;
और संकुचित क्रमशः उसके
अवयव का होता था ह्रास।

पृष्ठ भूमि के रूप में हिमालय का वर्णन कामायनी को विशेष गरिमा प्रदान करता है। उनकी उच्चता और भव्यता कामायनी-सन्देश के लिए अनुरूप भूमि उपस्थित करती है—

(विश्व कल्पना सा ऊँचा वह
सुख शीतल संतोष निदान;
और डूबती सी अचला का
अवलम्बन मणि रत्न निधान।)
मधुरिमा में अपनी ही मौन,
एक सोया संदेह महान्;
सजग हो करता था संकेत,
चेतना मचल उठी अनजान ॥

चिन्ता व्याकुल मनु को उनकी उदात्तता से प्रेरणा मिलती है। प्रलय के बाद हँसती हुई प्रकृति आशा के लिए स्थान बनाती है। इस तरह यथावसर हिमालय की यकृति घटनाचक्र के रंगस्थल के रूप में विषय को उदात्त और रमणीय बनाती है। रहस्य सर्ग के आरम्भ म प्रकृति के विशालतम सौन्दर्य का वर्णन ज्ञान; इच्छा और कर्म के समन्वय में समरस की सूचिका है और अन्त में आनन्द की प्राप्ति पर सारी प्रकृति में भी वही उल्लास व्याप्त देखते हैं। उस वातावरण में 'मासल सी हुई, हिमवती प्रकृति पाषाणी समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था, चेतनता एक विलसती, आनन्द अखंड घना था।" इस तरह हिमालय अन्त में—"जगती का पावन सा घना प्रदेश, शीतल अति शान्ति तपोवन।" हुआ हिमालय की विशाल रमणीयता के साथ मंगलमयता को भी मिलाकर लेखक ने भव्य को दिव्य बनाया।

इसी विशाल रमणीयता से लेखक की दृष्टि 'अनन्त की ओर भी आकृष्ट हुई। कौतूहल और रहस्य भावना का मूल प्रसाद जी में अनन्त रमणीयता मे ही है। "महानील इस परम व्योम में, अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान, ग्रह, नक्षत्र और विद्युतकण किसका करते थे संधान! हे अनन्त रमणीय! तुम कौन? यह मैं कैसे कह सकता। कैसे हो? क्या हो? इसका तो भार विचार न सह सकता' इस तरह विचार करते करते सृष्टि के मूल में आकर्षण शक्ति तक लेखक पहुँच जाता है। यह वैज्ञानिक भी है और रमणीय रागाकर्षण भी—

अणुओं को है विश्राम कहाँ,
यह कृतिमय वेग भरा कितना;
अविराम नाचता कम्पन है,
उल्लास सजीव हुआ कितना।

रति और काम के उपाख्यान में भी इसी रागाकर्षण से सृष्टि का आरम्भ बताया गया है।

कामायनी के उत्तरार्ध में दार्शनिकता की प्रधानता है। प्रश्न होता है कि काव्य में दर्शन का क्या स्थान हो सकता है। दार्शनिक विचारों को छन्दावद्ध करने से वह चिंतन हो सकता है न कि भाव। यह सच है कि दार्शनिक रचना में भावावेश, कल्पना और चित्रमयता नहीं होती पर कविता के क्षेत्र को इसी तक क्यों सीमित करें? कामायनी में दार्शनिक रचना भी सरस है क्योंकि वह जीवन से ओत-प्रोत है। यहाँ शुष्क दार्शनिक विवेचन नहीं, जीवन में इसका प्रयोग और ग्रहण है। इसलिए वह विषय भी हमारे भाव का आलम्बन बन सकता है। दर्शन के द्वारा जीवन के इस गम्भीर निरीक्षण में क्या हमारे हृदय-तन्तु नहीं हिलते। जीवन के गहरे अनुभव पीछे होने से ही कबीर और रहीम की उक्तियां साधारण नीरस नीति उपदेशों से भिन्न हो जाती हैं। 'आँसू' में भी जीवन में सुख दुख का चिंतन है। अँग्रेजी में इस तरह विचार और दर्शन के लिए प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। शैली में कामायनी के समान दार्शनिक निरीक्षण की गम्भीर ध्वनि और इलियट में 'आँसू' के समान विचारों का संगीत गूँज उठता है। एक उदाहरण देखें—

चेतना समुद्र में जीवन,
लहरों सा निखर पड़ा है;
कुछ छाप व्यक्तिगत अपना,
निर्मित आकार खड़ा है।
इस ज्योत्सना के जल निधि में,
बुद् बुद् सा रूप बनाये;
नक्षत्र दिखाई देते,
अपनी आभा चमकाये ॥

समरसता की आनन्दमय स्थिति में जड़-प्राण सब में एक ही चेतनता विलसती दिखाई देती है। उस उपस्थित में हमारे छोटे से जीवन का अस्तित्व और व्यक्तित्व क्या है। लहरों को अलग देखने पर भी समुद्र में उनका अस्तित्व कहाँ—उसी से उत्पन्न होते और उसी में विलीन। "आवर्त बुद् बुद् तरङ्गमयान् विकारानम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम।" इस तरह अखण्ड चेतना में खण्डित व्यक्तित्व का विलीन होना ही परमआनन्द है। नाद की प्रकृति वर्णन में भी इस बात की ओर कितना सुन्दर संकेत है।

कामायनी के पूर्वार्ध में मनोवृत्तियों की सजीव उद्भावना कवि कल्पना।" इन का मनोहर शृंगार है। "श्रद्धा, काम, लज्जा आदि वृतियों को अभ्यन्तर प्रेर-

णाग्रों और बाह्य प्रवृत्तियों की बड़ी मार्मिकता से परख कर उनके स्वरूपों की निराकार उद्भावना की गई है।" इन भावों का वर्णन कवि के सूक्ष्म निरीक्षण और मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचायक है । लाक्षणिक वक्रता और ध्वन्यात्मकता से कविता ओत-प्रोत है। 'प्रसाद जी की काव्यमयी मनोवैज्ञानिक कवि जगत में उनको बहुत ऊँचा उठा देती है।'

ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धनाचार्य का कथन है कि बाल्मीक ही एक मात्र कवि हैं। आदि कवि होने से उनकी मौलिकता परवर्ती कवियों में नही है । वीर शृंगार के भाव क्षेत्र में और वर्णन शैली में भी अन्य कवियों की रचनाएँ वाल्मीकि का उच्छिष्ट हैं। उन्होंने कुछ पॉलिश देकर अभियान्तर से उसी बात को कहा ? लेकिन भाव-क्षेत्र मे तथा कल्पना और चित्तमयता में प्रसाद जी की नवीन उद्भावनाएँ हैं। पाश्चात्य शैली को उन्होंने अपनाया अवश्य पर क्षेत्र को बहुत विस्तृत किया, अप्रस्तुत विधान के पुराने वस्तु जाल को भी नयी दृष्टि से देखा, सूक्ष्म निरीक्षण किया । रस की बंधी लीक को उन्होंने छोड़ दिया।

अपनी भावना शक्ति से उन्होंने अपने हृदय के भावों की सजीव उद्भावना की और उसमें मनोवैज्ञानिक गहराई भी है पर रस की दृष्टि से उनका स्थान कहाँ है। हमारे यहाँ जीवन में प्रधानता और सामान्यता (साधारणीकरण) की दृष्टि से कुछ नौ) ही भावों की रस की दशा की कल्पना की गई है और अन्य को भाव या संचारी कह दिया है। पाश्चात्यों की दृष्टि साहित्य में केवल भाव दशा तक ही सीमित रही। सभी भावों की रस दशा होती है पर कहीं नाम नहीं और बहुधा मनोवैज्ञानिक वह सूक्ष्म निरीक्षण विवेचन नहीं हुआ। कामायनी में विरह वर्णन को छोड़ कर चिंता, आशा, लज्जा, ईर्ष्या संचारियों में गिनी गई हैं ; श्रद्धा, काम, वासना, निर्वेद भाव कह सकते हैं। कर्म और इड़ा (बुद्धि) और जीवन को दो प्रधान प्रवृतियां हैं, पर हृदय की भावनाओं से उनका सम्बन्ध नहीं।। यदि साहित्य की प्रवृति हृदय से विस्तृत सम्पूर्ण जीवन उसके शारीरिक, मानसिक (हृदय), बौद्धिक पक्ष मानें तो कर्म और इड़ा की भी रस स्थिति की कल्पना हो सकती है।

शास्त्रीय संचारियों से भी कामायनी के भाव बहुत व्यापक हैं । चिंता आदि जीवन से सम्बन्ध और उनको मनोवैज्ञानिक गहराई स्पष्ट हुई है। चिंता

आशा आदि का संचारी होने के अतिरिक्त अलग अस्तित्व है और जीवन में उनकी कितनी प्रधानता है। चिंता का अन्य अभाव में है और अतृप्ति से वह बढ़ती है। विलास वैभव नष्ट होने पर मनु की चिंता आरम्भ होती है। आधि-व्याधि की सूत्र धारिणी, चेतना मनन कराती है। चिंता में बुद्धि का प्रयोग होता है और उससे दुख और फिर इस सुन्दर पाप, मधुमय अभिशाप में कितना आकर्षण है। चिंता में ही विकास का बीज है—कौतूहल और चिंतन है।

हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल रेखा !
हरी-भरी सी दौड़ धूप ओ,
जल माया की चल रेखा !

चिंता पराजित की भावना है—मनु के लिए "प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में।" इसलिये चिंता में मनन और कौतूहल के पहले निराशा, जीवन से पलायन की प्रवृति होती है। "विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते ! बस चुप करदे, चेतनता चल जा, जड़ता से, आज शून्य मेरा भर दे।"

बाद की आशा में कल्पना और उल्लास भरा है। चिंता में कौतूहल जगाने वाली प्रकृति आशा के उदय से उल्लासमयी दीखती है। तब जीवनेच्छा जागृत होती है—'जीवन। जीवन की पुकार है, खेल रहा है शीतल दाह !" आशान्वित होकर कल्पना में लग जाते हैं—आह ! कल्पना का यह सुन्दर जगत मधुर कितना होता ; सुख स्वप्नों की दल छाया में पुलकित हो जगता सोता।" आशा में जीवन संतोष प्रकट करने के लिए साथी हुई श्रद्धा। श्रद्धा उत्साह, विश्वास, प्रेम और मंगल की मूर्ति है। "अरे तुम इतने हुए अधीर। समर्पण लो, सेवा का सार। आज से जीवन उत्सर्ग। दया, माया, ममता लो आज, मधूरिमा लो, अगाध विश्वास। विधाता की कल्याणी तृप्ति सकल हो इस भूतल पर पूर्ण। विजयनी मानवता हो जाय।" श्रद्धा हताश मनु को जीवन में प्रवृत कराती है, पलायनवादी को आत्म विश्वास दिला कर कर्मपथता सिखाती है। जीवन का आनन्द श्रद्धा से ही मिलता है।

दो के मिलन में काम का उदय है। कामना विस्तृत अर्थ में आकांक्षा का ही पर्याय है जो शुभ है। "काम मंगल से मण्डित श्रेय, सर्ग, इच्छा का है परिणाम।" कामना में आकर्षण है यौवन का, वसंत का सृष्टि का। इसी काम के आकर्षण में सृष्टि रहस्य छिपा है। काम आकांक्षा है और रति उसकी तृप्ति। आकांक्षा की तृप्ति से श्रद्धा का जन्म बताया गया है। काम विकार ग्रस्त होकर वासना बन जाती है। वासना में सौंदर्य, एक दूसरे की ओर खिचाव, धैर्यहीन आवेश, उपयोग की लालसा, हृदयेश्वरी सुन्दरी कहने की चापलूसी है। वासना से नारी लज्जित हो जाती है। लज्जा का सौंदर्य आकर्षण है ही, उसकी एक सार्थकता है—वासना का नियंत्रण कर गौरव गरिमा सिखाने में। लज्जा सर्ग विश्व साहित्य की विभूति है। लज्जा के स्वरूप और उनकी मनोहारिता, लज्जा के काम का यह वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

लाली बन सरल कपोलों में
  आंखों में अंजन सी लगती;
कुंचित अलकों सी घुंघराली
  मन की मरोर बनकर जगती।
(छूने में हिचक, देखने में
  पलकें आंखों पर झुकती हैं,
कलरव परिहास भरी गूंजें
  अधरों तक सहसा रुकती हैं।)
मैं उसी 'चपल' की धात्री हूं, (सौन्दर्य)
  गौरव महिमा हूं सिखलाती;
ठोकर जो लगने वाली है
  उसको धीरे से समझाती।

मनु का उद्धार नहीं हो सका। कर्म में हिंसा, पिपासा और महत्वाकांक्षा है। मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है—संकुचित स्वार्थ से, सब कुछ अपना कर लेने की अभिलाषा से। मनु श्रद्धा के पशु-प्रेम और भावी संतान से भी जलते हैं। ईर्ष्या अतृप्ति का कारण बन जाती है। मनु श्रद्धा को छोड़कर इड़ा के

पास जाते हैं। वह बुद्धि देवता है। बुद्धि में ज्ञान, तर्क, विचार, कर्म सब आ जाते हैं—

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वक्ष-स्थल पर एकत्र धरे,
संसृति के सब विज्ञान-ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म कलश
वसुधा जीवन रस सार लिये।
दूसरा विचारों के नभ को,
था मधुर अभय अवलंब दिये।

पर श्रद्धा के अभाव में बुद्धि का दुरुपयोग होता है, इसलिये निर्वेद की आत्म ग्लानि है।

१०

"कामायनी" में नारी का आदर्श

डॉ० सूर्यदेव वर्मा एम० ए०, डी० लिट्

हिन्दी साहित्य में रहस्यवाद की विचारधारा के प्रमुख प्रवर्तक श्री जयशंकरप्रसाद की रचनाओं में कामायनी का स्थान सर्वोच्च है। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'अजातशत्रु,' 'राज्याश्री,' 'प्रतिध्वनि', 'छाया', 'प्रेम पथिक' 'महाराणा का महत्व' और 'चित्राधार' आदि मुख्य हैं। इनकी मध्यकालीन रचनाओं में बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित नाटक 'स्कन्धगुप्त' तथा 'कामना' 'कंकाल' आदि रचनायें प्रमुख हैं। उनके जीवन के उत्तरकाल की रचनाओं में 'आँधी' तितली' 'ध्रुव स्वामिनी', 'लहर', 'आँसू' और 'कामायनी' आदि मुख्य हैं। श्री प्रसादजी की रचनाओं में यदि किसी को महाकाव्य का स्थान दिया जा सकता है तो वह कामायनी को मिल सकता है। यद्यपि महाकाव्य के समस्त लक्षण उसमें घटित नहीं होते फिर भी साहित्य दर्पणकार ने महाकाव्य के जो लक्षण निर्दिष्ट किये हैं उनमें दिव्यादिव्य कथानक, ऐतिहासिक नायक महापुरुष मनु का चरित्र-चित्रण, पन्द्रह प्रकरणों में काव्य का विभाजन, परम रमणीय प्रकृति वर्णन, प्रत्येक सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोगादि विशेषतायें कामायनी को महाकाव्य सिद्ध करने को पर्याप्त हैं। इस महाकाव्य के द्वारा कवि ने विश्व को मानवता का एक विशेष सन्देश दिया है। पूर्णतया महाकाव्य न होते हुए भी कामायनी विश्व साहित्य में एक अनुपम काव्य है जिसको लिखकर "स्वान्तः सुखाय" के सिद्धान्त के अनुसार कवि को स्वयं प्रसुप्त सन्तोष प्राप्त हुआ था। उसकी जीवन की चरम सीमा और काव्य रचना का परम लक्ष्य मानों कामायनी में ही मूर्तरूप बनकर प्रस्फुटित हुआ था।

कामायनी के पात्रों में बहुलता न होते हुए भी नारी की प्रमुखता का दिग्दर्शन हमें मिलता है। सारा महाकाव्य ही रहस्यवाद तथा छायावाद के आवरण को हटाकर यदि हम अवलोकन करें तो नारी के स्वरूप का एक विशाल चित्रणमात्र प्रतीत होता है। अतः कुछ विस्तृत विवेचन के साथ कामायनी में नारी के स्वरूप का दिग्दर्शन हमें यहाँ कराना अभीष्ट है।

(१) काव्य के आरम्भ से लेकर अन्त तक चरित्रनायक मनु का श्रद्धा तथा इड़ा के रूप में नारी के साथ सम्पर्क निरन्तर बना रहता है। जब देव सृष्टि के विनाश के पश्चात् जल प्लावन शान्त होता है तब हिमालय के एक उच्च शिखर पर मनु एक शिला पर बैठे चिन्तामग्न दिखाई देते हैं। उनके हृदय में आशा का उदय होता है तथा सुसंस्कृति को जीवित करने के लिये वह देव यज्ञ का आश्रय लेते हैं और यज्ञ अवशिष्ट अन्न कहीं दूर रख आते हैं जिसकी खोज में काम गोत्रजा गन्धर्व कन्या श्रद्धा वहाँ आती है। उसी श्रद्धा को प्रसादजी के कामायनी का नाम दिया है। श्रद्धा का प्रथम परिचय कवि ने करते हुए उसके इस प्रश्न के उत्तर में—

कौन तुम ? संसृति जलनिधि तीर.
तरगों से फेंकी मणि एक
कर रहे निर्जन का चुपचाप,
प्रभा की धारा से अभिषेक ?

मनु के मुख से कहलवाया है कि—

पहेली सा जीवन है व्यस्त,
उसे सुलझाने का अभिमान,
बताया है विस्मृति का मार्ग,
चल रहा हूँ बनकर अनजान।
क्या कहूँ, क्या हूँ मैं उद्भ्रान्त ?
शून्यता का उजड़ा सा राज।

इस प्रकार मनु का जीवन एक पहेली-सा बना हुआ था और जीवन-पथ पर वह अनजान बन कर चल रहा था। उसे जीवन में कोई हर्ष नहीं था, कोई प्रमोद नहीं था, कोई आनन्द नहीं था। उसका जीवन "शून्यता का एक

उजड़ा सा राज" था। उस उजड़े पतझड़ में श्रद्धा के दर्शन होते ही वह उल्लास से पुकार उठता है—

> कौन हो तुम बसन्त के दूत,
> विरस पतझड़ में अति सुकुमार !
> घन तिमिर में चपला की रेख,
> तपन में शीतल मन्द बयार !

श्रद्धा उसके जीवन में एक साकार मूर्त्त बनकर आती है, पतझड़ में बसन्त का दूत बनकर हर्ष का सन्देश लाती है और शुष्क हृदय में कल्पना की लघु लहरी दिव्य सरसता के रूप में प्रस्फुटित होती है। यह है नारी का नर से प्रथम मिलन, श्रद्धा का मनु से प्रथम परिचय तथा कवि की कल्पना के काव्य में नारी का प्रथम स्वरूप।

(२) जब श्रद्धा मनु के समीप उसकी जीवन संगिनी बनकर निवास करती है, वह उसके निराशापूर्ण जीवन में आशा की ज्योति जगाती है। उस समय भारतीय नारी का वैदिक संस्कृति के वातावरण में पालित पोषित पत्नी का वास्तविक रूप निखरता है। वह पतिव्रत धर्म का पूर्णतया पालन करती हुई मनु की सेवा में तत्पर रहती है। वह मनु को सर्वस्व समर्पण करती है। "श्रद्धा देवः मनु" शतपथ ब्राह्मण के इस कथन को चरितार्थ करती हुई वह मनु को ही अपना देवता मान उनकी सेवा में, तन, मन से सदैव निरत रहती है। यह है भारतीय नारी का दूसरा आदर्श जिसमें वह कहती है—

> दया माया, ममता लो आज,
> मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
> हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ,
> तुम्हारे लिये खुला है पास।

(३) यही नहीं; श्रद्धा केवल कामायनी के रूप में ही मनु के सम्मुख प्रस्तुत नहीं हुई है, वह मन में शक्ति, उत्साह, विजय कामना, निर्भयता आदि उत्तम गुणों का संचार करने के लिये उसके जीवन पटल पर अवतरित हुई है। वह कहती है—

श्रौर क्या तुम सुनते नहीं,
विधाता का मंगल वरदान—
शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा जय गान।

डरो मत अरे अमृत संतान,
अग्रसर हैं मंगलमय वृद्धि;
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

(१) कामायनी में जो पन्द्रह सर्ग रखे गये हैं उनमें (१) चिन्ता (२) आशा (३) श्रद्धा (४) काम (५) वासना के पश्चात् छठा सर्ग लज्जा कितना स्थानारूप है, जिसका वर्णन करना कठिन है। नारी में सब गुण होते हुए भी यदि लज्जा की मधुरिमा नहीं है तो कुछ भी नहीं, वैदिक आदर्श से उसका पतन है। महाकवि ने वासना के पश्चात् लज्जा का आविर्भाव कितने उचित स्थान पर किया है और लज्जा के ही मुख से कितने सुन्दर शब्दों में कहलाया है—

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ,
शालीनता सिखाती हूँ,
मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।
चंचल किशोर सुन्दरता की,
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

यही शालीनता और लज्जा भारतीय नारी का परम आदर्श है जो उसके सौन्दर्य की रक्षा करता है। इसी एक सर्वश्रेष्ठ गुण को लेखक मनु महाकवि के शब्दों में नारी के प्रति कितनी श्रद्धा प्रकट करता है यह नीचे के पद में देखिये—

नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नगपग तल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।

(५) कर्म में प्रेरित होने पर मनु वैदिक मार्ग से जब भ्रष्ट होने लगते हैं और "कर्म यज्ञ से जीवन के स्वप्नों का स्वर्ग मिलेगा" समझ कर जब वे यज्ञ में पशु बलि देने का असुर पुरोहितों के बहकावे में आकर आयोजन करते हैं तब श्रद्धा देवी उस "दारुण दृश्य रुधिर के छीटे अस्थि खण्ड की माला को देखकर अत्यन्त उदास और अप्रसन्न होकर यज्ञ का पुरोडास और सोमपान विना किये ही रूठकर चली जाती है। इस प्रकार विपथगामी मनु जब श्रद्धा के समझाने से नहीं मानते तब वह अप्रसन्न होकर और रूठकर अपना असहयोग प्रकट करती है। भारतीय नारी अपने विपथगामी पति को भी किस प्रकार सुपथ पर लाती है यह उसका कितना सुन्दर उदाहरण है। जीव हिंसा को अधम पाप बतलाती हुई वह प्राणियों के समानाधिकार को स्वीकार करती हुई "अहिंसा परमो धर्मः" का सुन्दर उपदेश करती है, सुनिये—

ये प्राणी जो बचे हुए हैं,
इस अचला जगती के,
उनके कुछ अधिकार नहीं,
क्या वे सब ही हैं फीके !
मनु ! क्या यही तुम्हारी,
होगी उज्जवल नवमानवता ?
जिसमें सब कुछ ले लेना हो,
हंत ! बची क्या शवता !

(६) इसके पश्चात् मनु ईर्ष्या से हृदय कलुषित करके श्रद्धा को त्याग कर चल देता है तथा दूर सारस्वत प्रदेश में जाकर इडा के समीप पहुँचता है। इडा के रूप में महाकवि प्रसाद जी ने आजकल की नारी का चरित्र-चित्रण

किया है। श्रद्धा के रूप में भारतीय नारी का पवित्र आदर्श हम तभी हृदयंगम कर सकते हैं जब उसकी तुलना में आधुनिक नारी के रूप में इड़ा के चरित्र का भी अध्ययन करें। प्रतिपक्ष की लघुता अथवा कटुता के तुलनात्मक अध्ययन में स्वपक्ष की प्रभुता अथव. मधुरता का अधिक मान होता है। इसीलिये आधुनिक वैज्ञानिक नारी इड़ा (बुद्धि) के स्वरूप का अध्ययन कवि ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है, तथा मनु का उसके साथ प्रेम और सहवास दिखलाकर बाद में उसका परित्याग संघर्ष और निर्वेद दिखलाया है। इसी बीच में श्रद्धा को स्वप्न में मनु की दुर्दशा का दर्शन होता है। वह तुरन्त उठकर मनु की खोज में चलती है और उसका स्वप्न खत्म हो जाता है।

(७) जब मनु का शरीर संघर्ष में घायल होकर सारस्वत नगर में पड़ा था और:—

"इड़ा ग्लानि से भरी हुई बस सोच रही बीती बातें, घृणा और ममता में ऐसी बीत चुकीं कितनी रातें।"

तब श्रद्धा ही एक सती नारी के रूप में मनु की खोज करती हुई वहाँ पहुँचती है और कहती है:—"अरे बता दो मुझे दयाकर, कहाँ प्रवासी है मेरा ?" और जब उसे पा लेती है तब "श्रद्धा नीरव सिर सहलाती आँखों में विश्वास भरे।" यह है आदर्श नारी की आदर्श पति सेवा ! अन्त में श्रद्धा मनु को आगे ले जाती है और त्रिकोण के दर्शन कराती है जिसमें इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय होता है। इच्छा का लोक रागारुण है जिसमें शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध की पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ चारों ओर नृत्य करती हैं। कर्म का लोक श्यामल है जिसमें संघर्ष और हलचल हैं, जो श्रममय और पीड़नमय है। ज्ञान का लोक सुख-दुख स उदासीन रजतमय धवल है। जब इन तीनों का समन्वय होता है तभी मनु को परमानन्द प्राप्त होता है। उसी समय महाकाव्य के अंतिम पद में महाकवि कहता है :—

"समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था, चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था।"

इस प्रकार समस्त महाकाव्य कामायनी में भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप की स्थापना की गई है। श्री रामनाथ 'सुमन' के शब्दों में 'विलास

प्रधान देव संस्कृति के स्थान पर आनंद प्रधान और लोक कल्याणमयी मानव संस्कृति की स्थापना का इसमें चित्र है।" इसमें नारी की प्रतिष्ठा द्वारा और उसके उच्चादर्श की स्थापना द्वारा कवि ने अपने इस महाकाव्य का अमर सन्देश दिया है। नारी की प्रतिष्ठा प्रसाद जी को अभीष्ठ थी और उसी का उच्चादर्श उन्होंने कामायनी में उपस्थित किया है। श्रद्धा द्वारा ही मनु को अन्त में आनन्द की प्राप्ति कराई है इससे मानव जीवन में नारी की महत्ता को चार-चांद लग गये हैं। इसी तत्व को ग्रहण करने तथा इच्छा, कर्म और ज्ञान के समन्वय को समझ लेने के पश्चात् मानव जीवन में आनन्द की प्राप्त होती है; अन्यथा नहीं। जीवन की समरसता में ही अखंड आनन्द है और वह समरसता नर को नारी से ही प्राप्त होती है। भक्त तुलसीदास ने नारी को ताड़न का अधिकारी तथा स्वामी शंकराचार्य ने "द्वारं कि केकन्नू नरकस्य नारी।" लिखकर जो नारी की अप्रतिष्ठा की थी उस कलंक को धोकर महाकवि प्रसाद जी ने नारी की प्रतिष्ठा के ऊंचे सिंहासन पर विराजमान कर दिया है, यही महाकवि की क्रान्तिदर्शिता है। यही नारी का वास्तविक वैदिक स्वरूप है।

— —

११

कामायनी में भूमा का तत्व और समरसत्ता

श्री पुरुषोत्तम दास अग्रवाल एम० ए०

मानव सुख की कामना करता है, उससे जीवन की अनुभूतियां ही उसके भविष्य के उन सिद्धांतों की नींव बनाती हैं। जिसके आधार पर वह अपनी अभिरुचि के प्रतिपादन का माध्यम अपनी कला को बनाता है और कला की सृष्टि में उसे आनन्द का अनुभव होता है। आनन्द ही आत्मा का धर्म है। सुख तो शारीरिक होने से स्थूल है, परन्तु आनन्द सूक्ष्म। सुख की सीमा भौतिकता तक ही रहती है। परन्तु आनन्द से मानसिक सृष्टि होती है। अतः आनन्द का पर्यवसान स्थूल उपकरणों में नहीं माना जा सकता है। आनन्द चिरस्थायी, अध्यात्मिक और असीम है। सुख अल्प, अचिर और नश्वर है। इसी से सुख त्याज्य है और आनन्द ग्रहणीय श्री जयशंकर प्रसाद ने इसी आनन्द तत्व की स्थापना शैवागम के प्रत्यविज्ञान दर्शन के आधार पर क्रिया और भूमा को ही इसका मूल माना है।

भूमा की चर्चा छन्दोग्य उपनिषद में विस्तृत रूप से की गई है। नारद और सनत्कुमार के सवाद के प्रसंग पर सनत्कुमार ने नारद से कहा कि "भो घे भूमा तत्सुखम्" नाल्पे वै सुखमस्ति, भूमा सुखम्"। अर्थात् जो है वही सुख है अल्प सुख नहीं है। इसलिए भूमा के विषय में जिज्ञासा करना उचित है। आगे इसी प्रसंग में पुनः बतलाया गया है कि जहां साधक अन्य कुछ नहीं देखता, अन्य कुछ नहीं सुनता, अन्य कुछ नहीं जानता, वह भूमा है। वह भूमा है और जहां अन्य कुछ देखता है, अन्य कुछ सुनता है, अन्य कुछ

जानता है, वह अल्प हैं। जो भूमा है, वह अमृत है और जो अल्प है, वह मर्त्य है।" इसके विश्लेषण से यह ज्ञात होता हैं कि व्यक्ति के सुख को पूर्ण रूप से समष्टिगत आनन्द में लीन कर देना ही भूमा है। इस भूमा का वर्णन उसी स्थान पर ब्रह्म या पुरुष-सूक्त के विराट पुरुष के वर्णन के समान है, क्योंकि उसकी स्थिती के विषय में कहा गया कि वह अपनी महिमा में है और शायद अपनी महिमा में भी नहीं है। इस प्रकार इन अनिश्चयात्मक शब्दों द्वारा यह भी सिद्ध होता है कि भूमावर्णनातीत है, फिर भी भूमा को समझने के लिए बहुत्व का बोधक कह सकते हैं। और इससे अतिशयता, अनल्पता का बोध होता है।

"यह भूमा अनुकूल वेदनीय तथा व्यक्ति के सुख का तिरस्कार करती है। क्योंकि इससे सुख की सीमा संकुचित हो जाती है। अतः संसार के मूल रहस्य को, अनुकूल वेदनीय तथा प्रतिकूल वेदनीय को समान अनुभव करके दोनों में आनन्दोपलब्धि करना ही भूमा है। तात्पर्य यह है कि जब हम व्यक्तिगत सुख की स्वार्थमयी धारा में बन्द रहते हैं, तो हमारी दृष्टि अनुकूल वेदनीयता तक ही रहती है। तथा हमें अपने ब्रह्म का ज्ञान रहने के कारण 'स्व' और 'पर' का भेद स्पष्ट लक्षित होता रहता हैं। परन्तु जब हमारे समष्टिगत चेतना का प्रादुर्भाव होता है तब जो आनन्दोपलब्धि होती है। उसमें 'अहम्' के शुरू का पर्यवसान हो जाता है अभी यह भूमा की स्थिति है। यह मधु से पूर्ण है, आनन्दमय है। मधुमय के लिए व्यास भाषा में लिखा है कि—

"यह तम्मरा प्रज्ञेश मधु मोहमयत्वात्।"

इसके सुख का आस्वाद वैषमय से ही होता है। इसी तत्व को दृष्टि में रखकर श्रद्धा मनु से कहती है—

> विषमता की पीड़ा से व्यस्त,
> हो रहा स्पन्दित विश्व महान्।
> यही सुख-दुख विकास का सत्य,
> यही भूमा का मधुमय दान॥

इसी प्रसंग का बोध श्रद्धा मनु को कराना चाहती है कि विषमता के ही कारण संसार में स्पन्दन है, गति है, चेतना है। यदि वैषम्यता न रहे तो

संसार जड़ हो जाए। यही विकास का मूल है। अतः यह भूमा का दान है। स्वयं शिव को भी अपनी स्थिति में वैषम्य या द्वन्द्वात्मिक या शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। शिव शक्ति सम्पत्ति होने पर ही कुछ कर सकने में समर्थ होते हैं। शिव में स्वातन्त्र्य आनन्द और प्रकाश है, पर शक्ति पराधीन, निरानन्द और अन्धकार है। विश्व में दोनों का ही महत्व है और इन दोनों की समरसता में ही सृष्टि है। शिव की क्रियाशीलता शक्ति से ही है। शैवागम में बतलाया गया है कि "शिव जब शक्ति से युक्त रहता है, तभी कुछ कर सकता है और इसके अभाव में तो देवः खलु कुशलः स्पंन्दितुमपि।"

सृष्टि में इसी द्वन्द्व की शक्ति का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर हम "शिव" हो जाते हैं। जब वैषम्य होगा। तभी शिवतत्त्व का बोध होगा, अतः स्पष्ट है कि द्वन्द्व या वैषम्य से ही विश्व का संचालन होता है। सुख-दुःख हो इसके लक्षण हैं। दुःख व्यापक है और सुख व्याप्य। अतः जो वैषम्य भूमा-सुख का मूल है उससे चिन्ताकुल होना उचित नहीं। श्रद्धा इसी वैषम्य से लड़कर मनु को जीवन में अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।

इससे सबके मूल में स्थिति जो एक रस शिव है, उसकी प्रत्यभिज्ञा से समरसता का भाव आता है, तथा इस समरसता के आनन्द के उत्पन्न होने पर द्वैत भी उसी प्रकार अमृत के समान हो जाता है, जैसे भिन्न दम्पति और जीवात्मा परमात्मा का सम्बन्ध। शैवागमन में ही बतलाया है।

"जाते समरसानन्दे द्वैत मप्यं मृतोपमम्।
मित्रयोखि दम्पत्योः जीवात्मा परमात्मनो॥"

शैवागम समरसता में दुख-सुख एक दूसरे को बढ़ाते हुए चलते हैं। इसी से आनन्द की उपलब्धि होती है। आनन्द से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं। स्थिती बनाए रखते हैं और पुनः आनन्द में ही प्रवेश कर जाते हैं। आनन्दा-त्खल्विस्मानि भूतानि जायन्ते आनन्दे नैव जातानि जीवन्ति, आनन्द प्रत्याभि संविशान्ति।" इस आनन्द की प्राप्ती के लिए वैषम्य आवश्यक है एक रसत्त्व शिवतत्त्व है। स्वयं शिव के भी द्वन्द्वात्मिका शक्ति से अलग रहने पर सृष्टि की स्थिती के समक्ष प्रश्न वाचक चिन्ह लग जाता है। अतः हे बसन्त के दूत

जिस विषमता को तुम जगत की ज्वालाओं का मूल मानते हुए, इसे अभिशाप समझते हो, वस्तुतः वही विश्व स्थिति का कारण और ईश का रहस्यमय वरदान है।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप।
जगत की ज्वालाओं का मूल॥
ईश का वह रहस्य वरदान।
कभी मत इसको जाओ भूल॥"

इसी वैषम्य से हम अपने को इस योग्य बना लेते हैं कि हमें भूमा की समष्टि दृष्टि या पर प्रत्यक्ष की "ऋपतम्भरा प्रज्ञा" का आस्वाद मिलने लगता है। सच्ची आत्मौपम्य-दृष्टि 'हीऋत् के नाम से अभिहित है। सत्य व्यक्तिगत है और ऋत् समष्टिगत जब सबमें एक दृष्टि रहती है, अपने समान ही सबको देखने की प्रवृत्ति हो जाय तो यही दृष्टि 'ऋत्' के नाम से कही जाती है? यह ऋतम्भरा प्रज्ञा ही मधु है और इस स्थिती वाले मनुष्य की वृत्ति को मधुमती वृत्ति कहते हैं।

प्रसाद ने इस अवतरण में प्रत्यक्रिया दर्शन के अनुसार की संसद को समझाने का प्रयत्न किया है। सामान्य रूप से सात-वस्तु का अनुसंधान पूर्वक निरूपण ही प्रत्यभिज्ञा कहा जाता है। दर्शन के एक रस शिव विना किसी साधन के ही अविलम्ब सृष्टि का निर्माण करते हैं। जब भी शिव स्वरूप होने का समरसता में अपना अधिकार रखता है। जिस प्रकार जगत कार्य-कारण भाव से परिचालित होता है। उसी भांति समरसता भी सबके मूल में स्थित होकर अपनी व्यापकता का उद्घोष किया करता है। श्रद्धा ने अगले पथ में मनु को बतलाया है कि जैसे समुद्र की व्यापकता में लहरों का जन्म होता है, और इन्हीं लहरियों के वीच प्रकाश पुंज मणि भी दृष्टिगत होते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त व्यापक समरसता में उठने वाली दुःख की नील-लहरियों के वीच मणिगान के समान कान्तिवाले सुख-पुंज उमड़ते हैं।

दुःख की पिछली रजनी बीच।
विकसता सुख का नवल प्रभात,

एक परदा यह झीना नील।
छिपाऐ हैं जिसमें सुखगान,
नित्य समरसता का अधिकार।
उमड़ता कारण जलधि समान,
व्यथा से नीली लहरों बीच।
उमड़ते सुख मणिगण द्युतिमान,

अतः तुम्हें क्षणिक सुख-दुःख जन्य चिन्ता को छोड़कर समरसता की ओर बढ़ना चाहिए। शैवागम के अनुसार इसी में लोक का कल्याण है। समरसता का प्रभाव श्रद्धा के जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में दिखाई पड़ता है। इसी से उसे दुःख का अनुभव नहीं होता। ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय भी समरसता या तज्जन्य आनन्दवाद ही है।

शैवागम में बताया गया है कि शिव और शक्ति मथ्य मथ्यक भाव से परस्पर संघटित होकर इच्छा, कर्म, ज्ञान में सामरस्य लाते हुए उल्लास या आनन्द उत्पन्न करते हैं। 'परेव सूक्ष्म्या अमाकला रूप कुण्डलिनी शक्ति' शिवेन सह परस्पर समरस्य रूप मथ्यमथ्यक भावात्मकम् संङ्घह मासाय उत्थिता सति इच्छा ज्ञान क्रिया श्रित्य रौद्रत्वम् उन्मुद्रयती वर्ण शरीरं उदासयति।" प्रसाद ने भी इच्छा ज्ञान-क्रिया की समरसता पर बल दिया है। बिना इसके मन की इच्छाएँ पूर्ण नहीं हैं—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है। इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।

दर्शन सर्ग में शिव का ताण्डव आनन्दवाद का प्रतीक है। जिस प्रकार योग की मधुमती भूमिका में अहम् और पर का भेद भाव मिट जाता है, अर्थात् साधक को अपनी अलग स्थिती का भाव नहीं रहता है इसी प्रकार जब 'अहम' का 'इदम्' में पर्यवसान हो जाता है, तो वही पुरुष और प्रकृति का सामरस्य है। जड़-चेतन सभी वहाँ पहुँचकर आनन्दमय हो जाते हैं।

शापित न यहाँ है कोई तापित पापी न यहाँ है।
जीवन वसुधा समतल है, समरस है, जोकि जहाँ है।

ऊपर बताया जा चुका है कि आनन्द आत्मा का धर्म है। उपनिषदों में भी आत्मा को आनन्द स्वरूप कहा गया है 'अयमात्मा परानन्दः।" जीवन को श्रद्धा के सहाय्य के द्वारा जब आनन्दमय बना लेते हैं तभी उसका प्रत्यभिज्ञान होता है। श्रद्धा से ही हम आनन्दमय आत्मा को उपलब्ध कर सकते हैं। बुद्धि ही अविद्या है। इसी से इड़ा (बुद्धि) के अतिचार से मनु का आनन्द नष्ट हो जाता है और अन्त में पुनः उन्हें श्रद्धा के ही साथ अपने व्यक्तिगत-जीवन में समरसता उत्पन्न करनी पड़ती है। इस आत्मा का ज्ञान मनुष्य को तब तक नहीं होता जब तक वह स्वयं न चाहे। मुण्डिकोपनिषद् में इस प्रसंग पर बतलाया गया है कि नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यन मेधया न बहुना श्रुतेन यमेव एवं वृदरसुते तेन लभ्यः। "इसी आत्मा को प्राप्त कर लेने पर आनन्द मिलता है।"

इन आनन्दवादियों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि ये दो प्रकार के होते हैं।

(१) वे आनन्दवादी जो दायित्वहीन और पराङ्मुख होकर अपने आनन्द में लीन होते हैं। ये व्यष्टि की साधना करने वाले हैं।

(२) वे आनन्दवादी जो संसार में बार बार परिस्थितियों के चक्र में पड़ कर भी अपने दायित्व का पूर्ण सम्पादन करते हुए आनन्दित होते हैं तथा जीव मात्र में मैत्री का भाव रखते हैं। प्रसाद ने इसी को माना है। इन्होंने दुःखी प्राणियों की भाँति संसार की निन्दा नहीं की है अपितु आत्मा का परिष्कार का समरसता से ही उस आनन्द की ओर अभिमुख किया है जिसकी प्राप्ति विकल्पात्पक बुद्धि से सम्भव नहीं है। इनके आनन्दवाद में बुद्धिवाद का विरोध है। पर बुद्धि का नहीं, क्योंकि आनन्द प्राप्ति में बुद्धि का कुछ न कुछ योग रहता ही है। इसी से उच्छृंखलता नहीं आती है। 'श्रध्या सत्यमानुते' के अनुसार मनु को भी आत्मिक शान्ति का आनन्द श्रद्धा से ही मिलता है। श्रद्धा से रहित व्यक्ति हीन माना जाता है। श्रद्धा ही जगत की थाती है, जीवन है और श्रद्धा के अभाव में ही मनु के समान मनुष्य का नाश होता है :—

स भवेत् सर्वतो हीनो यः श्रद्धारहितो नरः।
श्रद्धा वैधूर्य योगन विनश्येज्जगताम् स्थितिः॥ (त्रिपुरा रहस्य)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद ने जीवन में समरसता को ही श्रेय माना है। कामायनी में इस समरसता के तीन रूप मिलते हैं।

१—व्यक्ति की समरसता।

२—समाज की समरसता।

३—प्रकृति या पुरुष की समरसता।

प्रकृति और पुरुष के सम्बन्ध में बताया गया कि शिवतत्त्व में शक्ति भाव गौड़ और शिव भाव ही प्रधान है। परन्तु इसके परे दिनों की साम्यावस्था है। 'शिव प्रकाश रूप हैं, शक्ति विमर्श रूपिणि। अहमंश रूप का ज्ञान नहीं होता। शिव ही वहिर्मुख होने पर शक्ति हैं और शक्ति के अनार्मुख शिव है। दोनों ही शक्ति इनकी साम्यावस्था या समरसता में है। वस्तुतः शक्ति के बिना 'शिव' शव रह जाते हैं। शिव का 'ई' अंश ही शक्ति है। और शक्ति भी बिना शिव के सहयोग के जड़ और अन्धकार ही है। आपातत दोनों में वही सम्बन्ध स्वीकार किया जा सकता है जो चन्द्रमा और चाँदनी में है यही शिव और शक्ति का सामरस्य है। इसी सामरस्य को शैव 'परम शिव' और शक्ति 'पराशक्ति' कहते हैं। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो ज्ञात होता है कि कामायनी में श्रद्धा ही पराशक्ति के रूप में अवतरित हुई हैं, जिसके सहाय्य के विना शिव अंश (मनु) भी अपने कर्त्तव्य पथ पर अकेले सफल नहीं हो पाते हैं।

कामायनी में मनु का चित्रण शिव के अहमंश और श्रद्धा के इहमंश के रूप में हुआ है। प्रसाद ने अहमंश को इहमंश में लीन करने की जो उच्च साधना है, उसी के श्रेय को स्वीकार किया है। वे इस प्रकार इन दोनों में अद्वैत द्वारा समरसता उत्पन्न करते हैं। इसका रूप दो के नित्य सामरस्य (अर्थात् ब्रह्म और जगत की समरसता) में दिखाई पड़ता है। यहीं पर शंकर के अद्वैतवाद से इनकी भिन्नता है। श्री शंकराचार्य ने 'ब्रह्म सत्यम् जार्गमिथ्या के अनुसार ब्रह्म को सत्य और जगत को असत्य माना है, लेकिन भ्रम के कारण ही पर जगत सूक्ति-रजत और रज्जुसर्प की भाँति सत्य-सा प्रतीत होता है। प्रसाद ने यहीं पर निम्न पंक्तियों के द्वारा 'सर्वंखल्विदम ब्रह्म' को माना है।

सबमें घुल मिलकर रसमय ।
रहता वह भाव परम है ॥

अतः जगत की सत्य सत्ता को स्वीकार करते हुए उन्होंने जगत और ब्रह्म में भी सामरस्य उपस्थित किया है। इसमें जगत उस 'परमभाव' का क्रीड़ा-स्थल है उसी का वहिः प्रकाश है। जगत का उन्मीलन शिव स्वयं अपनी इच्छा से करता है, जिसमें 'एकोऽहम बहुस्याम्' की भावना रहती है। सृष्टि की इच्छा होते भी परम शिव के दो रूप शक्ति और शिव हो जाते हैं। प्रत्यभिज्ञा हृदय सूत्र में कहा गया है कि 'स्वच्छेना स्वमिनी विश्वमुन्मीचल पति।'' अतः जब विश्व शिवमय ही है, तो ऐसी दशा में जगत को असत्य कैसे कहा जा सकता है। शंकराचार्य ने जिसको माया कहा है, प्रसाद के अनुसार वही शिव की कर्तृत्व शक्ति है। और इसी के द्वारा ही शिव (पुरुष) व्यक्त होता है। माया भी शिव से आविर्भूत होने पर शिव रूप ही है। इसी से सत्य सत्ता से उद्भूत शक्ति को असत्य कैसे कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रसाद ने सुख-दुःख के आविर्भाव तिरोभाव में ही विकास का मूल माना है। और यही भूमा का मधुमय दान है। इन दोनों के एकरसत्व में ही समरसता है। इसी से आनन्द की उपलब्धि होती है और यही जीवन का चरम लक्ष्य है। अतः प्रसाद आनन्दवादी कवि हैं और समरसता ही इनका जीवन सिद्धान्त।

———

१३

'कामायनी' का भाषा-सौंदर्य

डॉ० रमेशचन्द्र गुप्त, एम० ए०, पी-एच० डी०

भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा को सर्वाधिक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। साहित्यकार भी अपने भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही करते हैं। अतः साहित्य-सर्जना के क्षेत्र में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि यदि भाषा सशक्त होगी तो साहित्यकार के भावों की अभिव्यक्ति स्वतः हो जायेगी, किन्तु यदि भाषा अशक्त हुई, तो साहित्यकार के भाव अस्पष्ट ही रह जायेंगे तथा उसका साहित्य चिर-स्थायी नहीं बन सकेगा।

'प्रसाद' जी अपने युग के अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। काव्य तथा गद्य के क्षेत्र में प्रचलित प्रायः सभी विधाओं को उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा समृद्ध किया। भाव, भाषा और शैली के क्षेत्रों में प्रयोग करते हुए उन्होंने हिन्दी-साहित्य को 'कामायनी' और 'चन्द्रगुप्त' सरीखी प्रौढ़ रचनाओं से अलंकृत किया। उनके सम्पूर्ण साहित्य में भावना एवं भाषा-शैली का पूर्ण उत्कर्ष मिलता है। वस्तुतः वे अनुभूति और अभिव्यक्ति को पृथक्-पृथक् देखने के पक्ष में नहीं हैं। उनकी मान्यता हैं कि यदि कवि में संकल्पात्मक मौलिक अनुभूति का तीव्र आवेग है तो उसकी अभिव्यक्ति निस्सन्देह सुन्दर एवं समर्थ होगी। 'काव्य और कला' शीर्षक निबन्ध में इस विचार को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—"व्यंजना वस्तुतः अनुभूतिमयी प्रतिभा का स्वयं परिणाम है। क्योंकि सुन्दर अनुभूति का विकास सौन्दर्यपूर्ण होगा ही।"

'कामायनी' में भी उनके भावों एवं भाषा में अपूर्व सौन्दर्य निहित है। काव्य-रूप की दृष्टि से यह कृति महाकाव्य की कोटि में आती है। महाकाव्य के लिए एक आवश्यक प्रतिबन्ध यह है कि उनकी प्रतिपादन-शैली क्षुद्र न हो कर गम्भीर उदात्त एवं घटना वर्णन क्षमता होनी चाहिए।

'कामायनी' को भावाभिव्यक्ति में सक्षम बनाने के लिए अनेक उपादानों का प्रयोग किया गया है। एवं गति शीलता की रक्षा के लिए शब्दशक्तियों वक्रोक्ति सौन्दर्य, प्रतीक विधान, शब्दालंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों का आश्रय लिया गया है। जिसका उद्घाटन यहाँ हम पृथक्-पृथक् करेंगे।

(१) 'कामायनी' में शब्दशक्तियां—शब्द की मुख्यत: तीन शक्तियाँ मानी गई हैं—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। किसी शब्द में साक्षात् संकेतित अर्थ की प्रतीति कराने वाली शब्दशक्ति अभिधा है। कभी-कभी शब्द के मुख्य अर्थ को ग्रहण कर लेने पर भी काव्यगत सौन्दर्य की उपलब्धि नहीं हो पाती। इसी कारण कुशल कवि इसके अधिक प्रयोग से बचने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु इसका एकान्त तिरस्कार करना सम्भव नहीं है। 'प्रसाद' जी ने भी वर्णनात्मक स्थलों पर अथवा विभिन्न कथा-सूत्रों का संयोजन करते समय इसके सरल एवं सुबोध स्वरूप को ग्रहण किया है। 'स्वप्न' सर्ग में सारस्वत नगर के इतिवृत्त का वर्णन करते समय अथवा 'आनन्द' सर्ग के प्रारम्भिक छन्दों में अभिधा के माध्यम से ही भावाभिव्यक्ति की गई है।

'प्रसाद' जी ने अभिधा की अपेक्षा लक्षणा एवं व्यंजना का आश्रय अधिक लिया है। लाक्षणिक एवं व्यांजनिक शब्दों का प्रयोग कवि अपनी आन्तरिक अभिव्यक्ति के लिए करता है। अभिधेयार्थ में बाधित होकर इन शब्दों में नई तड़प उत्पन्न करने की शक्ति आ जाती है। काव्योपयोगी होने के कारण लाक्षणिक प्रयोग वैसे तो प्राचीन काव्य में भी उपलब्ध हैं, किन्तु हिन्दी के छायावादी काव्य में इनका चरम उत्कर्ष पाया जाता है। छायावाद के श्रेष्ठ निदर्शन 'कामायनी' का तो प्रत्येक पृष्ठ लाक्षणिक भंगिमाओं से मुखर हो उठा है। केवल एक उदाहरण देखिये—

"वह प्रभात का हीन कला शशि, किरन कहाँ चाँदनी रही,
वह सन्ध्या थी, रवि शशि तारा ये सब कोई नहीं जहाँ।"

इस उद्धरण में श्रद्धा को 'प्रभात का हीन कला शशि' और 'सन्ध्या' कह कर सम्बोधित करना बाधित है। फिर भी इन दोनों में सादृश्य सम्बन्ध होने के कारण यह कल्पना निराधार नहीं कही जा सकती। जिस प्रकार प्रभात-कालीन चन्द्रमा अथवा सान्ध्य-वेला निस्तेज होते हैं, उसी प्रकार श्रद्धा भी अब मनु के वियोग में तेजहीन हो गई थीं। भावों का यह सौन्दर्य लक्षणा द्वारा ही सम्भव हो सका है।

(२) 'कामायनी' में वक्रोक्तिगत सौन्दर्य—वक्रोक्ति अभिव्यक्ति की उस प्रणाली को कहते हैं जिसके द्वारा कथन में एक विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न किया जाये। सामान्य व्यवहार में सहज कथन से बचने की प्रवृत्ति को अधिक श्रेयकर नहीं कहा जा सकता, किन्तु काव्य में गूढ़ अन्तंदशाओं का वर्णन होने के कारण वक्रतापूर्ण अभिव्यंजना की शैली का गुण माना गया है। वक्रोक्ति के अनेक भेद-प्रभेद किए जा सकते हैं। 'प्रसाद' जी ने इनमें से अधिकांश का प्रयोग किया है। प्रमुखता की दृष्टि से उन्होंने वर्णविन्यास, उपचार, विशेषण, संवृति, संख्या, उपसर्ग, निपात आदि से सम्बद्ध वक्रताओं का उपयोग करके भाषा में वैदग्ध्य का समावेश किया है। "कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मण्डराती "अथवा" कल कपोल था जहाँ विछलता कल्पवृक्ष का पीत पराग, जैसी पंक्तियों में वर्ण-विन्यास वक्रता का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

इसी प्रकार संवृति वक्रता के क्षेत्र में भी आलोच्य कवि ने सफलतापूर्वक भावाभिव्यक्ति की है। इस प्रकार की वक्रता में सर्वनामादि के माध्यम से भावों का संवरण करके सौन्दर्य-विधान किया जाता है। 'कामायनी' के काम, वासना, लज्जा, ईर्ष्या आदि सर्गों के अनेक भावों में इसका रुचिर प्रयोग किया है। एक उदाहरण देखिये—

'वे फूल और वह हंसी रही, वह सौरभ, वह निश्वास छना,
वह कलरव, वह संगीत अरे, वह कोलाहल एकान्त बना।"

यहाँ देवताओं की हंसी, उल्लास, चहल-पहल और संगीतमय वातावरण अतुलनीय था। अतः 'वह' शब्द द्वारा इनके सौन्दर्य का संवरण किया गया है।

(३) कामायनी में प्रतीक-विधान—'प्रतीक'-से हमारा तात्पर्य उस शब्द-विशेष से है जो किसी भाव अथवा विशेषता का द्योतन कराने के लिए जन-समाज में परम्परा तथा रूढ़ि के कारण प्रचलित हो गया है। भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए ये अत्यन्त काव्योपयोगी उपकरण हैं। छायावादी काव्य में तो इनका प्रचुर प्रयोग किया गया है।

'कामायनी' में प्रयुक्त प्रतीकों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—रूढ़ तथा कवि-निर्मित या स्वच्छन्द। अधिकांश कवियों द्वारा प्रयुक्त होते रहने के कारण कुछ प्रतीकात्मक शब्द बहुत प्रचलित हो जाते हैं। इन्हें रूढ़ प्रतीक कहा जाता है। 'कटि' और 'कुसुम' का प्रतीकत्व ऐसा ही है—

मुझको कांटे ही मिलें धन्य ! हों सफल तुम्हें ही कुसुम-कुंज।'

यहां कांटे को जीवन की बाधाओं और विषमताओं के लिए तथा 'कुसुम' को सुख और ऐश्वर्य के लिए प्रयुक्त किया गया है। प्रायः सभी कवियों ने इन्हीं अर्थों के भावना के लिए इन प्रतीकों का आश्रम लिया है, अतः ये रूढ़ प्रतीक हैं।

शैव-दर्शन का प्रतिपादक ग्रन्थ होने के कारण 'कामायनी' में इस मत के सैद्धान्तिक प्रतीकों को भी ग्रहण किया गया है। गोलक (ज्योतिष, पिंड) अणु (तुच्छ जीव), भूमा (सामरस्य की स्थिति), कारण जलधि (अहं) आदि इसी प्रकार के सैद्धान्तिक प्रतीक हैं।

'प्रसाद' जी ने कतिपय नवीन प्रतीकों की योजना की है। वासी फूल (म्लान भाव), रजनी के पिछले पहर (किशोरावस्था के बाद का समय), मतवाली कोयल (हृदय का उल्लास), नक्षत्र (ज्ञानी) आदि स्वच्छन्द प्रतीक हैं। वस्तुतः प्रसाद जी ने प्रतीकों की उदात्त योजना द्वारा अपनी भाषा को नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है।

'कामायनी में शब्दालंकार—शब्दालंकारों में कुछ विशिष्ट वर्णों या शब्दों की योजना करके अभिव्यंजना में चारुता उत्पन्न की जाती है तथा उनके स्थान पर समानार्थी शब्दों का प्रयोग करने से वह चमत्कार नष्ट हो जाता है। अर्थालंकारों का प्रयोग तो भावों के उत्कर्ष, के लिए किए जाता है, किन्तु शब्दालंकार भाषा से प्रत्यक्षतः सम्बद्ध हैं अतः काव्य-भाषा का अध्ययन करते समय इनका विवेचन करना आवश्यक है।

'कामायनी में अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। वस्तुतः आलोच्य कवि ने शब्दों का खिलवाड़ करने की प्रवृत्ति को अधिक उचित नहीं समझा। फिर भी अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा,पुनरुक्ति-प्रकाश, विशेषण विपर्यय, अर्थध्वनन आदि के प्रयोग से भाषा में रुचिरता का समावेश किया गया है। पुनरुक्तिप्रकाश और अर्थध्वनन का क्रमशः एक-एक उदाहरण देखिए।

(अ) "धीरे,धीरे लहरों का दल; तट से टकरा होता ओझल,

छप छप का होता शब्द विरल, थर थर कंप रहती दीप्ति तरल।

(आ) धू-धू करता नाच रहा था,

अनिस्तत्व का तांडव नृत्य।

(५) 'कामायनी' और काव्य गुण—काव्यगुणों की संख्या के सम्बन्ध में आचार्यों में पर्याप्त मतभेद है, किन्तु आनन्दवर्द्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि ने तीन गुणों-माधुर्य, ओज प्रसाद—को ही स्वीकृति प्रदान की है। कामायनी कार ने इन तीन गुणों का यथास्थान निरूपण करके अपनी काव्य भाषा को भाव तथा रस के अनुकूल रखा है। माधुर्य-गुण की तो उसमें विशिष्ट स्थिति रही है—

"लाली बन सरल कपोलों में, आँखों में अंजन-सी लगती।

कुंचित अलकों-सी घुंघराली, मन की मरोर बनकर जगती।

इन पंक्तियों में स, म, न, ल, र आदि कोमल वर्णों तथा अनुस्वारमयी पदावली से कारण माधुर्य गुण की योजना हुई है। प्रान (प्राण), मरोर

(मरोड़), पास (पाश) नखत (नक्षत्र), थिर (स्थिर) आदि शब्दों में कर्ण-कटु वर्णों के स्थान पर कोमल वर्णों की योजना करके भी माधुर्य-रक्षा की गई है।

चिंता, इड़ा तथा संघर्ष नामक सर्गों में कवि ने ओज गुण का नियोजन किया है। प्रलय-वर्णन तथा मनु और सारस्वत नगर की प्रजा के युद्ध के समय ओजगुणमयी शब्दावली का व्यवहार हुआ है। प्रसाद गुण के निर्वाह की ओर भी 'प्रसाद' जी सजग रहे हैं। इसी कारण 'कामायनी' में अधिकांशतः-सहज अर्थवाही शब्दों को ग्रहण किया गया है, किन्तु तत्सम शब्दों का वहुत प्रयोग और सांकेतिक (लाक्षणिक) अभिव्यक्ति की प्रचुरता के कारण उसकी भाषा के प्रसादत्व में व्याघात भी पहुँचा है। कथानक की रूपकात्मकता और शैव दर्शन की अभिव्यक्ति के कारण पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी प्रसाद गुण की अभिव्यंजना में बाधक रहा है। किन्तु इससे प्रस्तुत कृति की महत्ता कम नहीं होती। वस्तुतः 'कामायनी' एक साहित्यिक कृति है—अतः उसमें सांकेतिक अभिव्यक्ति को दोष नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'कामायनी' में माधुर्य गुण की मूलवर्ती स्थान प्राप्त हुआ है। इसके बाद क्रमशः प्रसाद और ओज-गुणों की स्थिति रही है।

(६) **'कामायनी में मुहावरे लोकोक्ति**—मुहावरे लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सहजता तथा प्रभावोत्पकता का समावेश किया जाता है। छायावादी कवियों ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया है—निराला, पन्त और प्रसाद को अपवाद माना जा सकता है। 'कामायनी' में कवि ने मुहावरों की प्रचुर योजना की है। गहरी नींव डालना, व्योम चूमना, सांस उखड़ना, रंग बदलना, दांव हारना, कान खोल कर सुनना, तिल का ताड़ बनाना, लहू का घूँट पीना, रात काटना आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग करके काव्य-चमत्कार की सिद्धि और प्रभाव की वृद्धि की गई है।

(७) **'कामायनी' की भाषा-समृद्धि और शब्द-लालित्य**—कवि का शब्द-ज्ञान जितना ही व्यापक होगा, वह उसी अनुपात में भावों की सहज और

वोधगम्य प्रस्तुति कर सकेगा। 'कामायनी' में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग हुआ हैं। इनके तद्भव रूपों तथा विदेशी भाषाओं के कतिपय प्रचलित शब्दों की स्वीकृति भी उसमें देखी जा सकती है। स्वाभाविकता, माधुर्य एवं प्रवाह की रक्षा के लिए स्थानीय शब्द, अनुकरणमूलक शब्द, वर्ण-परिवर्तन आदि की प्रवृत्ति भी उसमें ग्राह्य रही है। इस सम्पूर्ण शब्द-वैविध्य को पृथक्-पृथक् रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(अ) तत्सम शब्द—समीर, चरण, विकल, अखिल, जलद, प्रज्या, आवर्जना, अलम्बुषा, नाराच आदि।

(आ) तद्भव शब्द—निवल (निर्बल), नाच (नृत्य), सपना (स्वप्न), रात (रात्रि), राज (राज्य) आदि।

(इ) देशज शब्द—पेंगों, ठिठोली मचल आदि।

(ई) विदेशी शब्द—वंगला का 'अपरूप' तथा अरबी-फारसी के तीर, दाग, गुलावी, परदा, नोंक, चमक, घायल आदि।

(उ) स्थानीय शब्द—गैल. मुसक्याती, झिटका, लुटरी आदि।

(ऊ) अनुकरण-मूलक शब्द—रिमझिम, झिलमिल, थर-थर, अरराया, सनसन आदि।

(ए) पुनरुक्त शब्द—दूर-दूर, दिन-दिन, कहते-कहते, राशि-राशि, नस-नस, आस-पास, चहल-पहल, नोंक-झोंक आदि।

(ऐ) शब्द-लालित्य—संयुत (संयुक्त), मरोर (मरोड़), किरन (किरण), प्रतारित (प्रताड़ित), परदेसी (परदेशी) आदि।

(ओ) शब्द मोहक—मधुर, मधु, महा, नव तथा चिर शब्दों का विशेषणवत् का बहुत प्रयोग किया गया है।

उपसंहार

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि 'प्रसाद' जी की भाषा पर्याप्त सशक्त तथा समृद्ध थी। भाषा-सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए उन्होंने विभिन्न उपकरणों

का आश्रय लेकर अपनी कला-कुशलता का परिचय दिया है। बोलचाल की लोक-सामान्य भूमि से कुछ दूर होने के कारण 'प्रसाद' जी की भाषा पर प्रायः क्लिष्टता का दोषारोपण किया जाता है। किन्तु, ऐसा उचित नहीं है। रस-वर्द्धन के लिए लाक्षणिक उक्तियों के समावेश को अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता। वैसे भी, यद्यपि प्रसाद जी के समक्ष शुद्ध साहित्यिक भाषा का आदर्श रहा है, तथापि 'कामायनी' की भाषा कृत्रिम नहीं है। उसमें भावों के अनुकूल भाषा-परिवर्तन का ध्यान रखा गया है। मुहावरों की समुचित योजना तथा तद्भव और स्थानीय शब्दों के प्रयोग द्वारा भी उसमें सरलता और स्पष्टता का समावेश किया गया है। वस्तुतः भाषा की प्रांजलता, लाक्षणिक प्रयोगों की प्रबल सार्थकता, अभिव्यक्ति की उदात्तता, भाषा की भावानुकूलता आदि विशेषताएं कवि की शैली के महान गुण हैं। इन्हें देखते हुए हमें यह मानना पड़ेगा कि कामायनीकार ने खड़ी बोली को संस्कृत का सौष्ठव और गाम्भीर्य प्रदान किया है।

———

१३

कामायनी-विश्व-समस्या का प्रतीक

श्री राजीव रंजन, एम० ए०

मैथ्यू आर्नाल्ड के अनुसार "कविता जीवन की आलोचना है" और प्रेमचन्द ने भी "साहित्य को जीवन की व्याख्या" माना है। कवि जीवन का व्याख्याता होता है। प्रकृति का विशाल प्रांगण, समाज की विविध घटनाएँ काव्य के उपकरण होते हैं, प्रखर प्रतिभा और उर्वर कल्पना उसकी भित्ति होती है और मानव-जीवन उसका प्रसाद होता है। विशिष्ट जीवन की व्याख्या कर कवि समाज के आदर्श को उपस्थित करता है। जीवन का सौंदर्य, मानव-जीवन का सत्य और समाजगत आदर्श विशिष्ट मानव और विशिष्ट समाज के चित्रण से ही संभव है। इसके साथ ही जीवन की पूर्ण व्याख्या के लिये वाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों एवं विशेषताओं को दिखलाना आवश्यक होता है। सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक परिस्थितियाँ वाह्य परिस्थितियाँ हैं और प्रेम, दया, ममता आदि आन्तरिक गुण हैं। व्यक्ति एक से प्रभावित होता है और दूसरे से संचालित। कवि क्रांतिदर्शी और त्रिकालदर्शी होता है। वह वर्तमान के साथ भूत और भविष्य को भी देख सकता है। इस वर्तमान को अतीत और अनागत के मध्य में रखकर उसकी महत्ता का मूल्यांकन करता है। व्यक्ति समाज का अंग है और दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध भी है। व्यक्ति समाज का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचन्द के गोदान का होरी किसान वर्ग का प्रतिनिधि है, उसी प्रकार मनु तत्कालीन मानव जाति का। कोई (भी उच्च कृति शाश्वत और सर्वभौम सत्य लिये होती है। अतः वह समाज और देशकाल का प्रतिबिम्ब होती है।

२० वीं शताब्दी की उथल-पुथल और संक्रांतिकाल की संज्ञा दे सकते हैं। १६ वीं शताब्दी के कवि टेनीसन और २० वीं शताब्दी के प्रसाद जी में युगानुरूप समता है। दोनों संक्रमण काल के कवि हैं। तत्कालीन विश्व जीवन दुखमय हो गया था। जीवन के प्रत्येक अंग-पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन, राजनीतिक जीवन में विशृंखलता आ गयी थी। नारी हीनता की भावना से पीड़ित थी। ऐसे समय में दोनों कवियों ने काव्य के माध्यम से समाज-सुधार, जीवन में सुख, शान्ति और सामंजस्य लाने की कामना की है—

"Man with the head and woman with the heart,
Man to commond and woman to obey,
All else confusion".

तथा

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत नग पदतल में,
पीयूष स्रोत-सी बहा करो,
जीवन के सुन्दर समतल में।"

देश की राजनीतिक हलचल और प्रशासन में न्याय लाने के लिए आवाज उठायी और ऐसे राज्य की कामना की, जहाँ—

"All land of settled Government,
A land of just and old renown,
Whose freedom broadens slowly down,
From precedent to precedent".

तथा

'यह क्या श्रद्धे। बस तू ले चल
उन चरणों तक दे निज संबल
सब पाप पुण्य जिसमें जल-जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल।
मिटते असत्य से ज्ञान लेश
समरस अखण्ड आनन्द वेश।
× × × ×

मनु ने कुछ मुसक्या कर
कैलास श्रोर दिखलाया
बोले "देखो कि यहाँ पर
कोई भी नहीं पराया।
हम अन्य न श्रौर कुटुम्बी,
हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे श्रवयव हो,
जिसमें कुछ नहीं कमी है।
शापित न यहाँ हैं कोई,
तापित पापी न यहाँ है,
जीवन वसुधा समतल है,
समरस है जो कि जहाँ है।'

(मानसरोवर कैलास पर वह स्थान है जहाँ श्रद्धा की सहायता से मनु पहुँचते हैं श्रौर क्लेश मुक्त होते हैं।)

पारिवारिक जीवन सामाजिक श्रौर विश्व जीवन की कसौटी है। मनु मानव का श्रौर मन के दोनों पक्ष का प्रतीक है। मनु के जीवन की विडम्बना तत्कालीन जीवन की विडम्बना है। श्राज का जीवन व्यक्तिपरक हो गया है श्रौर मनु व्यक्तिवादी हैं। स्वरित मन को दूषित करता है। यह श्रहंकार, स्वार्थ, ईर्ष्या-द्वेष श्रौर कलह को जन्म देती है। सत् प्रवृत्तियों श्रौर श्रसत् प्रवृत्तियों में संघर्ष का कारण प्रसादजी ने इच्छा, क्रिया श्रौर ज्ञान में पृथकत्व होना बताया है।

"ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है
इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।"

इच्छा भाववृत्ति या संस्कृति है, जिसमें धर्म, नैतिकता, कला, साहित्य श्राते हैं। क्रिया कर्मवृत्ति है जिसमें राजनीतिक श्रौर धार्मिक व्यवस्थाएं श्राती हैं।

ज्ञान ज्ञानवृत्ति है जिसमें दर्शन, विज्ञान आते हैं। मनु जब हृदय-पक्ष यानी श्रद्धा की ओर झुकता है अथवा मानव में जब रागात्मिकावृत्ति रहती है तब वह अहिंसा, मानववाद की ओर अग्रसर होता है और जब मानसिक पक्ष-इड़ा की ओर झुकता है यानी अति बुद्धिवादी बन विज्ञान का सहारा लेता है अथवा जब मानव में व्यवसायात्मिका बुद्धि रहती है तब वह अति सुख के लिए असफल प्रयत्न करता है और सभी संघर्ष उत्पन्न होता है। दुर्जेय प्रकृति पर उसने विज्ञान द्वारा विजय पायी। त्रिदिक विश्व के तीन ज्योतिपिंड-भावलोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक की भिन्नता ही सारे संघर्षों और विषमताओं की जड़ है। इस भौतिक और बुद्धिवादी युग के सारे अनर्थों को कवि ने अध्यात्म का सहारा लेकर सुलझाया है। "कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू"। मानव मन के चितेरा, जीवन-द्रष्य कवि प्रसाद जी ने पौराणिक आख्यान लेकर प्रतीक की संभावनाओं द्वारा मन और तत्कालीन जीवन का सूक्ष्मविश्लेषण कर ऐसा रूप दिया है जो कामायनी को युग की प्रतिनिधि रचना बना देता है। बौद्ध दर्शन के दुखवाद से शैव दर्शन के आनन्द वाद तक ले जाकर कवि समरसता (मध्यम मार्ग) का सन्देश देता है। अहंकार की क्लेश स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति यानी मनोमय कोश से आनन्दमय कोश तक ले जाने का ध्येय सुख-शांति का ही संदेश है। समरसता, समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति के मूल में स्थित है। इच्छा, क्रिया और ज्ञान का समन्वय तथा श्रद्धा के माध्यम से त्रिपुर-भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक भावों का सामंजस्य कर कवि ने समरसता की अवस्था को अनुकरणीय और सुखद बताया है। सृष्टि के रहस्य को समझने के लिये भौतिकवाद से परे अध्यात्मवाद, जिसमें जीवन की व्याख्या के लिये पौराणिक आख्यान का सहारा लेकर उस सत्ता का आभास कराया है जिसे उपनिषदों ने "यत वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" कहा।

'स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तनमय थे।'

जलप्लावन के बाद आदिपुरुष मनु बच जाते हैं। वे द्वैत की कल्पना कर अवशिष्ट अन्न बाहर रख आते हैं श्रद्धा और मनु दोनों को एक दूसरे की अनुभूति होती है। मनु के मन में जीवन साथी की लालसा जागती है। श्रद्धा भी मनु पर आकर्षित होती है। मनु का अहंकार और श्रद्धा की लज्जा बीच में बाधक है। मन देने में पुरुष चालाक होता है, नारी बिना सोचे-समझे आत्म-समर्पण कर देती है। मनु स्वार्थी और अहंकारी हैं। यह मानव स्वभाव है कि वह आदमी रहकर महान् बनना चाहेगा पर देवता बनना वह कभी नहीं चाहता—

'मैं हूँ यह वरदान सदृश क्यों,
लगा गूँजने कानों में,
मैं भी कहने लगा मैं रहूँ,
शाश्वत नभ के गानों में।'

श्रद्धा "कामायनी" की धुरी है—

'दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।'

श्रद्धा मनु को सेवा परायण और आत्मविस्तार करने की शिक्षा देती है। वह कहती है कि योग्य बनो तब वांछित वस्तु प्राप्त हो सकती है।

'उसके पाने की इच्छा हो,
तो योग्य बनो कहती-कहती।'

मानव-मानव के बीच सम्बन्ध जोड़ने के लिये, जीवन की समसता के लिये प्रेमकला या प्रेमतत्व विधाता की सृष्टि का मूलाधार है। यदि दिव्यशक्ति का दुरुपयोग होता है तो संघर्ष और युद्ध छिड़ता है।

'यह लीला जिसकी विकस चली,
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।'

प्रेम के लिये सौंदर्य, कामभावना, प्रकृति आदि अनिवार्य अंग हैं। सौंदर्य आकर्षण का मूल है, काम मन की आदिम प्रवृत्ति है और प्रकृति आलम्बन है, जहाँ ये व्यापार संभव होते हैं। श्रद्धा की मानसिक स्थिति बीच की है। उसका मन ढीला पड़ गया है—

'पर मन भी क्यों इतना ढीला,
अपने ही होला जाता है।'

फिर सोच-विचार करने लगती है—

'मैं एक पकड़ हूँ जो कहती,
ठहरो कुछ सोच विचार करो।'

मनु को नियति का थपेड़ा खाते देख वह सरस हो जाती है। नारी की यही विवसता है—

'नारी जीवन का चित्र यही,
क्या ? विकल रंग भर देती है;
सकती हूँ और ठहरती हूँ,
पर सोच विचार न कर सकती।'

पुरुष अधिक स्वार्थी होता है, नारी हृदय की दुर्बलता के कारण जब एक बार किसी को हृदय अर्पण कर देती है तब विवस होकर झुकती ही रहती है—

'मैं जभी तोलने का करती,
उपचार स्वयं तुल जाती हूँ।'

दाम्पत्य जीवन सूत्र में बँधने के पूर्व संकल्प लेने की रीति है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से मित्रता जोड़ने के समय संकल्प लेता है और संधिपत्र लिखता है।

'आँसू के भींगे अंचल पर,
मन का सब कुछ रखना होगा;
तुमको अपनी स्मृत-रेखा से।
यह संधि-पत्र लिखना होगा।'

अतः सुख-शांति के लिये नर-नारी, शासक-शासित, राष्ट्र-परराष्ट्र को समरसता का मार्ग अपनाना होगा। समन्वय के लिये, "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना के लिये, दृष्टिकोण को विस्तृत करना पड़ेगा।

'समरसता है सम्बन्ध बनी,
अधिकार और अधिकारी की।'

तथा

'यह अभिनव मानव प्रजासृष्टि,
दुःख देगी यह संकुचित दृष्टि।'

× × ×

समन्वय इसका करे समस्त, विजयिनी मानवता हो जाय।'

आधुनिक विश्व के प्रजातन्त्र के पोषक महामानव श्री नेहरू ने भी सुख शांति के लिये कुछ ऐसा ही कहा है—

"In the ultimate analysis the roots of war are in the minds of people."

प्रसाद का 'भूमा' और 'समरस' सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर वर्ग-भेद, सामंजस्य विरोधी विघटन तत्त्व की खाई है। वैषम्य में समत्त्व स्थापित कर शिवत्त्व की कल्पना की जा सकती है। व्यष्टिगत सुख को समष्टिगत सुख में पर्यवसित कर देना ही कामायनी का सामाजिक आधार है। विश्व-मैत्री का मार्ग खोजकर प्रसाद जी ने सचमुच ही संतोष की साँस ली होगी। अतः यदि हम प्रसाद जी के इस जीवन-दर्शन से समरसता के महान जीवन संदेश को ग्रहण कर तदनुरूप अपनी भावनाओं को मोड़ दें और आदर्श पर चलें तो विश्व-कल्याण, विश्व-मैत्री हो जाय।

———

१४

श्री जयशंकर प्रसाद और कामायनी का अमर सन्देश

प्रो० सत्येन्द्र चतुर्वेदी

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के विकास पर विचार करते समय गोस्वामी तुलसीदास के अनन्तर मन में श्री जयशङ्कर प्रसाद का ही नाम सहसा उभर कर आता है—अपनी दृष्टि से जीवन के मर्म को परख कर जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से दिग्भ्रान्त, केवल भारतीय जनता का ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानवता का मार्गदर्शन किया। गोस्वामी जी की रचनाओं में केवल उनका युग ही प्रतिबिम्बित नहीं हो रहा वरन् एक साहित्य सृष्टा के अनुरूप उनकी रचनाओं से हम अपने प्रस्तुत और आगत जीवन के लिए यथेष्ट कल्याणकारी तत्व चुन सकते हैं। त्रेता युग का रावण अभी मरा कहाँ है यह तो और भी अधिक उग्र और विकराल रूप में हमारे अणु-अणु में आ बसा है, समस्त जन-जीवन को मथे डाल रहा है, खण्ड-खण्ड कर रहा है। विगत काल में तुलसी के राम ने आस्था के भीषण संकट के समय सबल सम्बल बन कोटि-कोटि हिन्दू जनता को अनुप्राणित किया था, जीवन का एक उदात्त अध्याय खोला था और इस रूप में श्रेय-प्रेय का समन्वय किया था। किन्तु जयशंकर प्रसाद और उनकी मनीषा ने इतने भर को ही अलम न समझाए वे एक उच्च-कोटि के प्रबुद्ध साहित्यकार, भावुक कलाकार और द्रवण शील मानव थे। अतः "विषमता की पीड़ा से व्यस्त" मानव-जीवन को देखकर उनका मन आन्दोलित हो गया; आत्मा क्रन्दन कर उठी और वे इस भीषण समस्या के स्थायी समाधान के सम्भार में सन्नद्ध हो गये। उस महान द्रष्टा ने युग, जीवन

इतिहास परम्परा सबके अन्तराल को चीर कर 'कामायनी' के रूप में हमें एक ऐसी संजीवनी प्रदान की जिसमें भेद मूलक देश काल, समाज संस्कृति आदि की दीवारों से परे एक उदात्त सन्देश है—सचमुच 'कामायनी' चिरन्तन जीवन धर्म का एक अनुपम आख्यान है। क्या 'कामायनी' के मनु युग-युग के विक्षुब्ध मानव (प्रतीक रूप में मन) से किसी रूप में भिन्न है? क्या आज का स्वार्थ संकुल संतप्त व्यक्ति अपने को मनु की ही भाँति कटी पतंग की तरह भटका हुआ दिग्मूढ़ अनुभव नहीं कर रहा—

"क्या कहूँ क्या हूँ मैं उद्भ्रान्त,
विवर में नील गगन के आज।
वायु की भटकी एक तरंग,
शून्यता का उजड़ा सा-राज।"

पर मनुष्य की इस करुण मनोदशा का कारण क्या है, डा० प्रेमशंकर के शब्दों में—इच्छा, मन, ज्ञान-मस्तिष्क तथा क्रिया इन्द्रिय के व्यापार हैं। इन तीनों में सामन्जस्य ही जीवन की पूर्णता है। इनके अभाव में वह एकांगी हो जायेगा—

'ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।'

और मनुष्य की रही सही जीवनी शक्ति इस यान्त्रिक युग ने जर्जर कर डाली—

'प्रकृत शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी,
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी'।

इस प्राण सोषी अवस्था में मानव जी रहा है—विद्रूप, भोंड़ा और ध्वंस्त प्रायः घुटा जीवन; इस यन्त्र युग की विभीषिका के तले दम तोड़ता हुआ जीवन; या संसार से पलायन कर झूठे विश्वासों और थोथी परम्पराओं से

समझौते करने को मजबूर जीवन ! विधाता ! अमृत पुत्र मानव का यह कैसा रूप उभर कर सामने आ रहा है ? किन्तु प्रसाद जी ने बताया कि आस्थाहीन, श्रद्धाविरहित जीवन की तो ऐसी दशा नितान्त स्वाभाविक है । तर्क बुद्धि एक सीमा तक ही जीवन के लिए काम्य है—वरना आस्था बुद्धि ही प्रेरक शक्ति बन जीवन तथा जीवन के उदात्त आदर्शों के प्रति राग और आसक्ति उत्पन्न करती है प्रत्युत साधना पथ में हम राही बन हमारा सम्यक् मार्ग दर्शन करती है । मानों यहाँ एक बार फिर प्रवृत्ति मूलक सगुण मार्ग ने निवृति परक निगुंण ब्रह्म को पराजित किया हो और व्यर्थ की उदासीनता, अनासक्तता के कृत्रिम केंचुल को उतार फेंक जीवन संग्राम में प्रवृत्त हो अपनी विजय-वैजयन्ती फहराई हो देखिये—

'अरे तुम इतने हुए अधीर,
हार बैठे जीवन का दाँव ।
जीतते जिसको मर कर वीर,
तप नहीं केवल जीवन सत्य ।
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकांक्षा से है भरा,
सो रहा आशा का आह्लाद ।'

× × × ×

'और यह क्या तुम सुनते नहीं,
विधाता का मंगल वरदान—
"शक्ति शाली हो विजयी बनो"
विश्व में गूँज रहा जयगान ।
डरो मत अरे अमृत सन्तान,
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि ।
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र,
खिंची आवेगी सकल समृद्धि ।'

× × × ×

'शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।'

कितना अदम्य विश्वास है कवि का मानवता की चरम विजय में; किन्तु हम सही रूप में अपनी शक्ति को पहचाने तब न ? वस्तुतः ये जीवन, यह लोक बड़ा कमनीय और वरेण्य हैं; त्याज्य और गर्हित नहीं। पर यह भी सत्य है कि सक्षम व्यक्ति ही इसका भोग करने का अधिकारी है—

'यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रङ्ग-स्थल है।
है परम्परा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।'

कर्म सौन्दर्य का कैसा जीवन्त महिमा-गायन है। हमारा विश्वास है कि जयशंकर प्रसाद का सम्पूर्ण कृतित्व विशेषतः उनकी 'कामायनी' मानवता को जीवन के अँधेरे वीहड़ बनों में सदैव आलोक रश्मि प्रदान करती रहेगी। इस संदर्भ में इलाचन्द्र जोशी के शब्द कितने सार पूर्ण हैं--"कामायनी की रचना मानवात्मा की उस चिरन्तन पुकार को लेकर हुई है जो मानव-मन में आदि काल से जड़ी भूत अन्धतमिस्र पुञ्ज का विदारण कर जीवन के नव-नव वैचित्र्य पूर्ण आलोक पथों से होते हुए अन्त में चिर अमर आनन्द भास के अन्वेषण की आकांक्षा से व्याकुल है।"

———

१५

कामायनी लिखने का उद्देश्य

श्री रत्नलाल शर्मा

हम अपने मूल विषय को दूसरे सिरे से उठा कर देखें, यदि श्री जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' न लिखी होती तो हिन्दी जगत में उनका क्या स्थान होता ? हम देखते हैं कि प्रसाद जी का व्यक्तित्व या काव्य उनके जीवन काल में भी विवादास्पद नहीं रहा, किसी भी कोने से उनका ऐसा विरोध नहीं हुआ जो टिक सका हो जबकि उनके समकालीन निराला के अस्तित्व को नकारा गया और अन्य कवियों पर भी प्रश्न-चिन्ह लगे। इसका प्रमुख कारण यह था कि प्रसाद जी नाटक-क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो चुके थे, अतः कविता क्षेत्र में भी उन्हें बर्दाश्त कर लिया गया। प्रसाद जी हर तरह से साधन-सम्पन्न थे। उस समय की प्रमुख पत्रिका 'इन्दु' उनके पास थी। अतः उनके कवि व उनकी कविता को पूरे प्रचार का अवकाश मिला। फिर भी, प्रसाद जी ने देख लिया था कि 'आंसू', 'लहर', 'झरना', 'प्रेम पथिक' जैसे काव्य उन्हें अमरता प्रदान नहीं कर सकते। वह अमरता की खोज में लगे रहे और एक ऐसा समय आया जब उन्हें 'कामायनी' मिल गई। हम समझते हैं, अमरता की खोज ही 'कामायनी' लिखने का उद्देश्य था। महान लेखन के प्रति जागरूकता महत्वाकाँक्षी साहित्यकारों में प्रायः मिलती है। तभी प्रेमचन्द 'गोदान', यशपाल 'झूठा सच' और भगवतीचरण वर्मा 'भूले बिसरे चित्र' का सृजन कर सके। अस्तु, प्रसाद को उस समय उभरते हुए नये समीक्षक (जो आज शीर्षस्थ हैं) मिले। बस, प्रसाद जी सर्वोच्च आसन पर बैठ गए। 'कामायनी' की महानता के सन्दर्भ में उनके अन्य काव्य भी अपने पूर्व स्थान या अपेक्षित स्थान से उठ कर काफी ऊँचाई पर जा बैठे।

प्रसाद जी के समकालीन मैथिलीकरण जी गुप्त कथा काव्य लिख रहे थे। प्रसाद जी भी बार-बार उधर आकृष्ट हुए। उन्होंने 'आँसू' लिखा जिसमें कथा-सूत्र इतना झीना रहा कि पता ही नहीं चला कि कथा का सूत्र कब खिसक गया। हाँ, उस समय तक प्रतिष्ठित छायावादी काव्य शैली में अवश्य मिलती है। उन्होंने 'प्रेम पथिक' लिखा जिसमें कथा-सूत्र तो आरम्भ से अन्त तक रहा, पर छायावादी काव्य शैली का विशिष्ट रूप उसमें नहीं मिला। अतः बात कुछ बनी नहीं। प्रसाद जी इस दिशा में सचेष्ट रहे और अन्ततः उन्होंने 'कामायनी की रचना कर डाली जिसमें छायावादी काव्य शैली का विशिष्ट रूप है और एक कथा-सूत्र भी है। कथा-सूत्र झीना ही सही, बराबर बना रहता है और समीक्षकों ने घोषणा की कि 'कामायनी' महाकाव्य है, परम्परागत महाकाव्य की धारणा से अलग नए ढंग का महाकाव्य है।

जाहिर है कि प्रसाद जी कोई प्रबन्ध काव्य लिखना चाहते थे। उनके सामने कथा के आधार का प्रश्न आया। कथा कहाँ से लें? राम और कृष्ण उनके सामने आये, नहीं चलेगा, बहुत लिखा गया है। कोई और कहानी हो, पर पाठकों के लिए अपरिचित न हो। पुराणों और उपनिषदों का अध्ययन हुआ। जल-प्लावन की कथा बिखरी हुई मिली और मिला गए मनु, सृष्टि के आदि पुरुष। अस्तु, उन्होंने पूर्व प्रबन्ध काव्यों से भिन्न मौलिक कथा का आधार लेकर 'कामायनी' की रचना कर डाली।

प्रसाद जी वर्तमान के कवि नहीं हैं, बल्कि अतीत, सुदूर अतीत के कवि हैं। इतना ही नहीं, नाटकों और अधिकांश कहानियों में भी वह अतीत में रमते रहे हैं। उनके तेरह नाटकों में से आठ और ऐतिहासिक और तीन पौराणिक हैं। शेष दो भावनाट्यों का सम्बन्ध भी बीते युग या कल्पना-युग से है। स्पष्ट ही, प्रसाद जी अतीत के अतिरिक्त मोह से ग्रस्त हैं और 'स्व' को खोजने या अपने अहं को सन्तुष्ट करने के लिए अतीत में जाते हैं, जैसे वहीं रहते हैं। ऐसा कवि 'कामायनी न लिखता तो और क्या लिखता। अतः इस आधार पर हम उन सभी अभिमतों व वक्तव्यों के प्रति असहमति और असन्तोष प्रकट करते हैं जिनके अनुसार कामायनी लिखने का उद्देश्य भारतीय संस्कृति का आख्यान या मानव सभ्यता के विकास की कहानी कहना है।

मानव-विकास क्रम में दो पक्ष हैं—व्यक्ति और समाज। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में अपने व्यक्ति मनु को जल-प्लावन के बाद प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में भेज दिया है जहाँ उसकी असहाय व्यवस्था के कारण उसमे सामाजिक संरक्षण (यानि मिल कर रहने) की चाह मिलती है और सामाजिक भावना को दूर ठेलने वाला व्यक्ति-अहं से मिलता है। व्यक्ति अधिक से अधिक उपभोग चाहता है, पाना चाहता है, अधिक से अधिक अधिकार चाहता है, जब देने की बारी आती है तो भाग खड़ा होता है, यानि सामाजिकता से बचता है। भाग कर कहाँ जाना है? मनु सारस्वत पहुँचे। अपनी आदत से मजबूर व्यक्ति यहाँ के सामाजिक जीवन में उसी उच्छृंखलता से काम लेता है और जिसका उपभोग वह बन्धन-मुक्त जीवन में करता रहा है। इसके परिणाम स्वरूप उसे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति समाज के सामने टिक नहीं पाता, आहत हो जाता है। सामाजिक भावना से भागकर जो व्यक्ति सामाजिक जीवन में आ गया था, अब वह यहाँ से भागकर कहाँ जाए? जंगलों में जाकर 'आनन्दवाद' खोजे, इसके अलावा क्या चारा है? इस प्रकार प्रसाद जी सामाजिक भावना से भागने वाले और सामाजिक जीवन से हारने वाले व्यक्ति को इतने ऊँचे आसन पर बिठा देते हैं कि वह सबका पूज्य हो जाता है। इसके द्वारा प्रसाद जी समाज पर व्यक्ति की जय का उद्बोध करना चाहते हैं। अतीत (या भविष्य भी हो सकता है) के कल्पना-लोक में रमने वाले प्रसाद जी अपनी इस कल्पना को दार्शनिक जामा पहनाते हैं और काव्य के अन्त में समरसता का डंका पीट देते हैं।

"सम रस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था।"

दार्शनिक क्षेत्र के इसी समरसता सिद्धान्त को काव्य में प्रतिष्ठित करने के लिए प्रसाद जी ने "कामायनी" लिखी, पर इसमें सन्देह की पूरी गुंजायश है कि यह सिद्धान्त इसके कथाक्रम में उतर कर प्रतिष्ठित हो सका है, केवल "समरस" शब्द के प्रयोग मात्र से बात नहीं बन सकती। एक बात और। जहाँ जड़-चेतन में कोई अन्तर ही न रह जाए वहाँ तो जड़ता की स्थिति ही होगी या मौत होगी। जहाँ जीवन है, गति नहीं है, संघर्ष नहीं है, हम ऐसी

किसी भी स्थिति को न वास्तविक मान सकते हैं और न वह हमारे लिए श्रेयस्कर ही हो सकती हैं।

प्राय: कहा जाता है कि प्रसाद जी समन्वयवादी हैं, ज्ञान, इच्छा और क्रिया के समन्वित रूप को व्यक्ति के लिए आवश्यक बताने के लिए ही उन्होंने "कामायनी" की रचना की है। अगर हम इस बात को मान लें तो हमारे सामने प्रश्न उठता है, यह समन्वय क्या है ? इस सम्बन्ध में "कामायनी" की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
क्यों इच्छा पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की।"

सचाई यह है कि ज्ञान, इच्छा और क्रिया की भिन्नता जीवन की विडम्बना नहीं है, वास्तविकता है। यह स्थिति केवल उनके लिए विडम्बना नहीं जो आत्म-जीवी हैं, समाज से भागते हैं और फिर भी स्वयं को गौरवशाली अनुभव करते हैं। "कामायनी" में प्रसाद जी के सामने यही बात रही है।

प्रसाद जी ने "कामायनी" में इसी प्रकार की सूक्तियों को स्थान दिया है। कहते हैं, प्रसाद जी ने "कामायनी" में नारी के आदर्श रूप को प्रतिष्ठित किया है, इसके उदाहरण स्वरूप उनकी सूक्ति है।

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो।

प्रश्न है, क्या यही एकांगी रूप नारी का आदर्श रूप है? "पीयूष स्रोत-सी बहा करो" क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पुरुष के लिए विलास-साधन बन कर रहे ? कथाक्रम में ही सही, क्या नारी का कोई स्वतन्त्र रूप उभर कर आया है ? नारी पुरुष की भोग्या है और फिर प्रायश्चित स्वरूप एकान्त व परित्यक्त जीवन बिताने के लिए बाध्य होती है। इसमें उसका कर्म क्षेत्र क्या है ? दरअसल यह सब नहीं है। स्वार्थ-त्याग करने वाली नारी (श्रद्धा) अन्ततः पिछड़ जाती है और स्वार्थी पुरुष (मनु) सिद्ध पुरुष हो जाता

है । अतः यह काव्य नारी पर पुरुष की परम्परागत जय का काव्य है । यह बात प्रसाद जी कहना चाहते हों या नहीं, पर कथा-विकास में ऐसा हो गया है।

प्रसाद जी ने पुरुष और स्त्री को मिलाने के लिए रम्यस्थल चुना है जहाँ किसी प्रकार का कोई रोक नहीं है । पुरुष के अहं का निर्वाह हो इस लिए श्रद्धा ही पहले बोलती है और स्वयं आत्म समर्पण करती है । पुरुष स्वीकार लेता है, यही क्या कम बात है, मानो नारी पर बहुत बड़ा अहसान कर दिया इसमें प्रसाद जी की मनोभूमि मिलती है ।

"कामायनी" बाहरी जगत को इतना नहीं रखती जितना वह भीतरी जगत को खोलती है । इसलिए इसे अन्तश्चेतना का काव्य कहा जाता है । उल्लेखनीय है कि जिस युग में निराला 'राम की शक्ति पूजा' 'बादल राग', "छत्रपति शिवाजी का पत्र',, ''सरोज स्मृति" आदि कविताओं की रचना कर रहे थे जिनमें व्यक्ति-संघर्ष और सामाजिक चेतना का ओजस्वी स्वर है उसी युग में प्रसाद जी ने "कामायनी" में अन्तश्चेतना की पर्तों को खोल कर युग-जीवन के प्रति उदासीनता दिखाई । अब तक गुरु-शिष्यों ने मिल कर "कामायनी" की केवल प्रशंसा की है, कल का समीक्षण इन प्रश्नों के सन्दर्भ में "कामायनी" का पुनर्मूल्यांकन करेगा ।

———

१६

'कामायनी में रहस्यवाद'

श्री श्रीनारायणसिंह एम० ए०, रिसर्च स्कालर

रहस्यवाद के रहस्य को परिभाषाओं और व्याख्याओं के द्वारा स्पष्ट करने का जितना ही प्रयास किया गया, उसका स्वरूप और भी उलझता चला गया। पौर्वात्य पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई परिभाषाएँ और व्याख्याएँ इसके पुष्कल प्रमाण हैं। किसी ने इस मनोविज्ञान के निकष—चेतना, संवेदन अनुभूति और मनोवृत्ति पर परखने की कोशिश की,[1] तो किसी ने स्वभाव विशेष के आधार पर खड़ा करने का उपक्रम किया,[2] किसी ने इसे सत्य तथा तथ्य तक पहुँचने का माध्यम बताया,[3] तो किसी ने कल्पना और भावुकता के आधार पर आधृत चिन्तन क्षेत्र का ब्रह्मवाद घोषित किया।[4] किसी ने पदार्थ-गत चेतना का विश्व चेतना के साथ ऐक्य की अनुभूति को रहस्यवाद की अभिधा दी,[5] तो किसी ने जीवात्मा का अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन माना, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना संबंध जोड़ना चाहती है।[6] इसे एक जीवन-दर्शन के रूप में भी स्वीकार किया गया है।[7]

१—३ परशुराम चतुर्वेदी द्वारा लिखित "रहस्यवाद के पृ० १२ से १४ पर उद्धृत, अनूदित एवं विवेचित।

४—श्यामसुन्दर दास: "हिन्दी के दो प्रमुख वाद" पृ० २२

५—प्रो० केशरी कुमार : हिन्दी निबंधावली बि० विश्व विद्यालय प्रकाशन।

३—डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी के दो प्रमुख वाद, पृ० २५

७—रहस्यवाद एक ऐसा जीवन दर्शन है जिसका मूलाधार, किसी व्यक्ति के लिए उसकी विश्वात्मक सत्ता की अनिर्दिष्ट या निर्विशेष एकता वा पर-

रहस्यवाद की प्रवृत्ति जितनी ही पुरानी है, साहित्य में एकवाद के रूप में उसका परिवर्तन उतना ही नया। इसीलिए प्रो० केशरी कुमार का यह मत कि—शब्द की दृष्टि से यह रवि ठाकुर के काव्य के साथ आया हुआ वाद है किन्तु प्रवृत्यात्मक दृष्टिकोण से यह उतना ही पुराना है जितनी पुरानी मानव जाति [1]—पूर्णतः सत्य है। डा० भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव' का भी यही मत है। [2] परशुराम चतुर्वेदी जी ने भी प्रकारान्तर से इसे स्वीकार किया है। [3] छायावाद के साथ ही रहस्यवादी प्रवृत्ति अपनी नूतन अभिधा के साथ उभरकर सामने आई। इसके बाद आलोचकों और अनुसंधायकों ने इसका सूत्र प्राचीन साहित्य में भी खोजने की सफल कोशिश की।

रहस्यवाद का भाव वैभव समस्त वैदिक, औपनिषदिक एवं पौराणिक साहित्य में बिखरा मिलता है। सच तो यह है कि रहस्यवाद का जो सुघर रूप एवं भाव-सम्पदा उपर्युक्त साहित्य में प्राप्त है, वह इतर साहित्य में नहीं। ब्रह्म स्वयं सृष्टि का सबसे बड़ा रहस्य है। उसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए ऋषियों ने जो कुछ लिखा है, उसीमें इस प्रवृत्ति का प्रथम दर्शन होता है। ब्रह्म का सगुण और निर्गुण रूप आत्मा का स्वरूप है। हिरण्मय पात्र से

मात्मा तत्व की प्रत्यक्ष एवं अनिवर्चनीय अनुभूति में निहित रहा करता है और जिसके अनुसार किये जाने वाले उसके व्यवहार का स्वरूप स्वभावतः विश्व जनीन एवं विकासोन्मुख भी हो जा सकता है।

—परशुराम चतुर्वेदी : रहस्यवाद (पटना), पृ० २५

१—हिन्दी निबंधावली (वि० विश्वविद्यालय प्रकाशन,)

२—रहस्यवाद (परशुराम चतुर्वेदी) : वक्तव्य, पृ० ३

३—उपर्युक्त, पृ०

४—(i) वृ० अ० उ०, २/३/१ (ii) वेदान्त-दर्शन ३/२/११-१६, ३/२/२१-२६ (iii) डा० मुन्शीराम शर्मा : मा० सा० सू० सा०, पृ० ४०, (iv) हि० सा० को०, पृ० ८७२

५—छां० उ० ३/१४/३,

आवृत्त पूषण,[1] समस्त संसार की ब्रह्म की व्याप्ति[2] आदि अनेक रहस्यात्मक स्थल उपनिषदों में ही भरे पड़े हैं और पौराणिक साहित्य का भी समस्त शरीर ही रहस्यवाद की चादर में लिपटा हुआ है। इस चादर के भीतर में प्रवेश कर उसके मूल रूप, तत्व और लक्ष्य को पकड़ पाने की असमर्थता कभी-कभी तत्व द्रष्टा को हतोत्साहित कर देती है। पुराणों की आत्मा तक नहीं पहुँच पाने के कारण ही हिन्दू समाज में अनेक सम्प्रदायों का संगठन एवं बहुदेव बाद का प्रचार हुआ। यह बहुदेव वाद वैदिक साहित्य से भी मिलता है। प्रकृति के सबल तत्वों को ईश्वर मानकर उनकी आराधना किया जाना इसका पुष्कल प्रमाण है। उपनिषदों के ज्ञानालोक में यह प्रवृत्ति दब-सी गई, जो अनुकूल परिस्थिति पाते ही उभर कर आयी।

हिन्दी के आदिकरण और भक्तिकाल में भी यह प्रवृति लक्षित है। नाथों और विरुधों की रचनाओं में व्यंजित रहस्यात्मक प्रवृत्ति रिक्त के रूप में कबीर को प्राप्त हुई जायसी के रहस्यवाद का स्रोत भारतीय चिन्तन भूमि पर प्रवाहित है किन्तु उसका द्रव विजातीय (विदेशी) है।

आधुनिक काल में छायावाद के साथ यह प्रवृत्ति अपनी दुंदु भी बजाती हुई महादेवी, पंत, निराला, प्रसाद और रामकुमार वर्मा की रचनाओं में प्रकट हुई। महादेवी की रहस्यवादी रचनाओं को इस दृष्टिकोण से अपेक्षा कृत अधिक समाचार प्राप्त हुआ। आराधना का नैवेध, और अर्चना का भाग-दीप युक्त अम्रती सजाये हुए इसका मधुर रूप व्यक्त हुआ। इसका विवेचक यहाँ अनपेक्षित है। अतः, प्रसाद-साहित्य, विशेषतः कामायनी, की रहस्य-भावना का ही विचार करना है।

डा० रामकुमार वर्मा ने रहस्यवादी कवि (साधन) की तीन स्थितियाँ बताई हैं[3]। (१) विश्व चेतना या विराट के अनंत वैभव का दर्शन, मानव और उसकी ओर आकर्षण। इस स्थिति में साधक पहले निरपेक्ष होकर परमेश्वर

१—ईशावास्योपनिषद्-१५

२—'ब्रह्म' शब्द की उत्पत्ति मूलक व्याख्या।

३—हिन्दी के दो प्रमुखवाद—सम्पादक—प्रेमनारायण टण्डन

के वैभव का—प्रकृति के व्यक्त रूपों में—दर्शन करता है, उसका अनुभव करता है और अन्त में उसकी ओर आकृष्ट होता है; (२) प्रेम की दशा–जिसमें साधक उस परम सत्ता से प्रेम करना—सम्बन्ध जोड़ना आरम्भ करता है और (३) लाभ की स्थिति, जिसमें रहस्यवादी अपने और विराट विभु के बीच कोई अन्तर नहीं पाता। यहाँ आत्मा परमात्मा के साथ इस प्रकार मिल जाती है जिस प्रकार दूध में शक्कर।

कामायनी में कवि की पहली स्थिति की प्रबलता मिलती है। कवि प्रकृति के दोनों रूपों—मधुर और भयंकर—को देखता है। सबसे पहले उसे प्रलय काल का दृश्य गोचर होता हैं। वह हिमालय के उत्तुंग शिखर पर समाहीन साश्रुनयन मनु को चिन्ता ग्रस्त देखता है। मनु के सामने प्रलय का जल सागर उमड़ रहा है। जिसमें उसके ठोस और तरल—दोनों रूप दिखाई पड़ते हैं।

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छांह,
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह
नीचे जल था ऊपर हिम था,
एक तरल था एक सघन
एक तत्व की ही प्रधानता,
कहो उसे जड़ या चेतन ॥"—चिन्ता सर्ग

मनु के जीवन में मधुर आलोक बिखेरती हुई ऊषा का भी आगमन होता है। मन में नवजीवन स्पन्दित हो उठता है। हर्षोन्मिलित नेत्रों से परमात्मा की विभूति को नये रूप में देखने लगते हैं। प्रलय का दृश्य आँखों से दूर होने लगता है, जल के गर्भ में से पृथ्वी सहमी सकुचाई सी बाहर निकल आती है।

सिन्धु से ऊपर धरा वधू अब,
तनिक संकुचित बैठी-सी।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में,
मान किए सी ऐंठी सी'—आशा सर्ग

प्रकृति के दोनों रूप उसी परमसत्ता की व्यक्त अनन्त विभूति है। इसका दर्शन मनु कर चुके हैं। अब वे सृष्टि में नया हेम घोलने वाले उस विराट सत्ता के प्रति आकृष्ट होते हैं और तभी कौन ? की जिज्ञासा हृदय के आलोड़न में घुल जाती है। विश्व देव, सविता, पूषा, मरुत, सोम आदि को अहर्निश चक्कर लगाते देखते हैं। उनके मन में उस सत्ता का अस्पष्ट बोध होता है। जिसके संकेत पर ये सब नाच रह हैं; किन्तु मनु उसे समझ नहीं पा रहे हैं और इसीलिए उसके सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगा देते हैं।

वह विराट था हेम घोलता
नया रंग भरने को आज,
कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक
और कुतूहल का था राज।
विश्व देव सविता या पूषा
सोम मरुत चंचल पवमान,
वरुण आदि सब घूम रहे हैं,
किसके शासन में अम्लान। —आशा सर्ग

इस अनन्त निस्सीम नीलाकाश में ये ज्योतिर्मान ग्रह नक्षत्र आदि किसका संधान करते रहते हैं ? किसके रस से सिंच कर ये वनस्पतियाँ वीरुध लहलहे हो रहे हैं ? मनु उसके अस्तित्व को जानना चाहते हैं। जिसका गुणगान यहाँ जड़-चेतन सभी करते हैं।

महानील इस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान।
ग्रह नक्षत्र और विद्युत् कण,
किसका करते-से संधान ?
छिप जाते हैं और निकलते
आकर्षण में खिंचे हुए ?
तृण वीं रुध लहलहे हो रहे
किसके रस से सिंचे हुए ?

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन हो प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?—आशा सर्ग

उस परम सत्ता का अनुभव प्रसाद जी को होता है। मनु उस अनन्त रमणीय का अनुभव तो करते हैं; किन्तु उसे व्यक्त नहीं कर पाते हैं। उनका विचार उस सत्ता के भार को स्वीकार करने में असमर्थ हो जाता है।

"हे विराट ! हे विश्व देव ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान ?"—आशा सर्ग

यहाँ उस परमसत्ता की विभूति-प्रकृति का दर्शन, उसकी अनुभूति और उसकी ओर आकर्षण स्पष्ट लक्षित है।

शैव दर्शन में प्रेम सम्बन्ध की अभिव्यक्ति नहीं मिलती। कामायनी का दार्शनिक आधार भी वही है। इसीलिए इसमें कहीं कोई ऐसा संकेत नहीं मिलता जिसमें आत्मा-परमात्मा का प्रेम-व्यापार व्यक्त हो। यह प्रेम सम्बन्ध माधुर्यभाव परक रहस्यवाद में ही संभव होता है। संस्कृत के शैव काव्यों में सती और पार्वती के साथ उनके अत्यन्त मर्यादित (कुमार संभव में घोर शृङ्गार भी वर्णित है।) एवं पवित्र प्रेम संवन्ध की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु वहां की शक्तिमान और शक्ति का ही संयोग-भाव है। शिव को तो परमात्मा मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं हो सकता, किन्तु आत्मा का वहाँ अभाव है। इस प्रेम संबन्ध की अभिव्यक्ति के अभाव का मूल कारण शिव के प्रति साधक की महत् और पूज्य बुद्धि भी हो सकता है। कामायनी में भी श्रद्धा और इड़ा के साथ मनु का मधुर सम्वन्ध व्यंजित हुआ है, किन्तु इनमें से कोई भी आत्मा-परमात्मा का बोध नहीं कराते।

इस दूसरी परिस्थिति में साधक अपने कर्म-पथ (साधना-पथ) पर आगे बढ़ता जाता है और अन्त में उस स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ उसे मंगलमूर्ति साक्षात् नारायण का दर्शन होता है। मनु आगे बढ़कर नरेश के चरणों में पहुँच जाते हैं जहां उनके मन की सारी मलिनताएँ मिट जाती हैं, नष्ट हो जाती

हैं और वे उस समर सत्ता जन्य दिव्यानन्द का सान्निध्य लाभ लेने की कामना करने लग जाते हैं।

ज्ञान, कर्म और इच्छा के विच्छिन्न लोक से आगे मनु को वह भूमि दिखाई पड़ती है जहाँ इनका समन्वित रूप नयन गोचर होता है; दिव्य अनाहत निषाद सुन पड़ता है। इस मधुर मंगल ध्वनि के कानों में घुलते ही मनु तल्लीन हो जाते हैं। यह तल्लीनता श्रद्धा और पूज्य बुद्धि के अभाव में संभव नहीं है। इसीलिए मनु के साथ यहाँ श्रद्धा को भी दिखाया गया है।

स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में।
श्रद्धा युत मनु बस तन्मय थे। —रहस्य सर्ग

यह साधक की तीसरी अवस्था है जिसमें आत्मा विश्वात्मा में विलीन हो जाती है, 'अहं, इदं, 'स्वजन' 'परिजन' आदि का अन्तर मिट जाता है, अज्ञान जन्य समस्त सीमाएँ टूट जाती हैं और संसार में ब्रह्म की विभूति का दर्शन होने लगता है। अखण्ड आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगता है।

चिति का विराट् वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर

× × ×

'सब पहचाने से लगते, अपनी ही कला से'
समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती।
आनन्द अखण्ड घना था— —आनन्द सर्ग

कामायनीकार ने विश्वात्मा के साथ आत्मा की तदाकारता का वर्णन नहीं किया है, किन्तु उस स्थिति का वर्णन अवश्य किया है जहाँ शिव के विराट् वपु का दर्शन होता है। यह साधक की साधना का चरम निदर्शन है।

स्वरजन ने रहस्यवाद को साधना की दृष्टि से निम्नलिखित कोटियों में विभाजित किया है।

(१) सौन्दर्यपरक रहस्यवाद—Beauty Mysticism
(२) व्यक्तिपरक रहस्यवाद—Devotional
(३) दर्शन परक रहस्यवाद—Philosophical''
(४) प्रकृति परक रहस्यवाद—Nature Mysticism
(५) प्रेम परक रहस्यवाद—Love Mysticism
(६) शिशुपरक रहस्यवाद—Child Mysticism

सौन्दर्य परक और प्रकृति परक रहस्यवादी प्रकृति के रूप माधुर्य की उस असीम अव्यक्त सत्ता का व्यक्त रूप मानता है। प्रकृति के सौन्दर्य सिन्धु का पावन सलिल एवं उसमें खिले पुष्प की उसी अज्ञात सत्ता के रूप लावण्य हैं। प्रसाद जी की भी यही मान्यता है। अनन्त रमणीय ब्रह्म अपनी पूर्णकला प्रकृति के कण-कण में बिखेर रहा है। यह दूसरी बात है कि प्रसाद का कवि उस सत्ता से अपरिचित है—

हे अनन्त रमणीय कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता। —आशा सर्ग

भक्ति परक रहस्यवाद में दैन्य और आत्मसमर्पण के भाव की तीव्रता अपेक्षित होती है। इस प्रकार की तीव्रता वैष्णव भक्ति काव्य में अधिक मिलती है। कबीर की रचनाओं में भी यह तीव्रता देखी जा सकती है। 'कामायनी' में वैसी तीव्रता तो नहीं मिलती है किन्तु नर्तित नरेश के चरणों तक पहुँचाने का श्रद्धा से आग्रह करते हैं, वहाँ प्रसाद के मन की भक्तिभावना स्पष्ट लक्षित है। भक्त का राग समर्पण के भाव में घुलकर जिस अनिवर्चनीय आनन्द की सृष्टि करता है, यहाँ प्रसाद के मन का राग उस प्रकार घुल नहीं पाया है। इसीलिए भक्त हृदय को भाव विदग्ध कर देने वाला स्थल नहीं मिलता है। 'लहर' और 'आँसू' में पीड़ा के घुल जाने के कारण उसमें भक्ति-परक रहस्यवाद की-सी स्निग्धता आ गई है। भक्ति परक रहस्यवाद विचार

और प्रेम के मधु मिश्रण से युक्त रसायन है।[1] कामायनी में विचारों का गाम्भीर्य तो है, किन्तु प्रेम का मधु नहीं, इसलिए मधुर रसायन तैयार नहीं हो सका है।

आलोच्य कृति में प्रसाद जी का चिंतन उस सीमा पर पहुँच चुका है जहाँ वे सृष्टि के सारे रहस्य को समझ लेने का प्रयास करते हैं। इस महानील परम व्योम में ज्योतिर्मान ग्रह नक्षत्र और विद्युत् कण किसका संधान करते रहते हैं ?

प्रकृति और शिशु पर रहस्यवाद का विकास और पाश्चात्य साहित्य में जिस रूप में हुआ है, उस रूप में हिन्दी साहित्य में नहीं। यों, यह चराचर प्रकृति परम ब्रह्म परमात्मा की व्यक्त कला है और उसका अत्यधिक परिहार साहित्य में नहीं हो सकता। इसलिए प्रसाद जी ने भी उस विभूति को एकदम छोड़ नहीं दिया है। देव सभ्यता के विध्वंश और नूतन सृष्टि के उन्मेष में उसी प्रवृत्ति का रूप दिखाई पड़ता है।

'काव्य में रहस्यवाद' पर विस्तृत विचार करते समय आ० शुक्ल जी ने इसे दो भागों में विभक्त किया था।[2] पहले को उन्होंने जिज्ञासामूलक और दूसरे को भावमूलक बनाया था। शुक्ल जी द्वारा उक्त प्रवृत्ति का यह विभाजन अधिक स्पष्ट है। जिज्ञासा में जानने का भाव प्रबल होता है। ज्ञान को भूख तीव्रता से महसूस होती है। जीवन, जगत, प्रकृति, ब्रह्म, माया, जीव आदि के रहस्य को समझने और जानने की प्रवृत्ति जहाँ प्रबल होती हैं, वहाँ जिज्ञासा मूलक रहस्यवाद होता हैं। इसमें उपासना का भाव नहीं मिलता। प्रसाद जी में यहीं पर रहस्यवाद मिलता है। चिंता की घोर अमा के अन्त में जब 'आशा' की ऊषा जब अपनी समस्त विभूतियों के साथ विहँस उठती है तो मनु के मन में जिज्ञासाएँ उठने लगती हैं। आशालोक में नेत्रोन्मिलन करते ही मनु देखते हैं कि सृष्ठि के इस प्रथम प्रभात में वह बिराट सत्ता अपना नया रंग घोल रही है। उनके मन में कौन ? की जिज्ञासा उठती है। जिज्ञासा का यह भाव

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायतः जायसी और कबीर का रहस्यवाद पृ० ६८

२—आ० रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, भाग २।

तब तक शांत नहीं होता जब तक उसे आश्वस्त हो जाने योग्य समाधान नहीं मिल जाता। और, जब समाधान प्राप्त हो जाता है, मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु एवं हृदय-सिंधु के आलोड़न शाँत हो जाते हैं तो प्रकृति में भी उसे वही स्वर श्रुतिगोचर होने लगता है। मनु के मन की भी यही स्थिति है। उनकी जिज्ञासा भी उस विराट् विश्वदेव के कुछ होने का आभास पाकर शमित हो जाती है। फिर सागर की लहरों के स्वर में भी उन्हें यही स्वर सुनाई पड़ने लगता है। यहाँ 'सागर गान' का उल्लेख कवि ने सायास किया है। सृष्टि का उन्मेष होने पर भी उसकी प्रलयकालीन लहरों का गर्जन दिशाओं में गुँज रहे हैं ये लहरें भी उसी सर्व शक्तिमान का गीत गा रही हैं।

आचार्य शुक्ल जी ने जिसे भावात्मक रहस्य कहा है वह कबीर, जायसी, महादेवी आदि की रचनाओं में ही प्राप्त होता है। प्रसादजी स्वभावतः चिन्तन-शील प्राणी थे। अतः परम सत् के चिन्तन में ही उनका मन रमा रहा। उसके साथ वे मधुर सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सके। दाम्पत्य सम्बन्ध के माध्यम से आत्मा, परमात्मा की विलास लीलाओं-क्रीड़ाओं या उसकी तैयारी का वर्णन भावात्मक रहस्यवाद के अन्तर्गत आता है। कामायनी में रहस्यवाद के इस मधुर रूप का अभाव है।

भारतीय रहस्यवादी परम्परा में एक प्रवृत्ति साधना की भी रही है जिसका दर्शन नाथ-सिद्धों और कबीर की रचनाओं में होता है। शरीर के भीतर ही सृष्टि के सारे रहस्य को बताना, शारीरिक साधना (पंचमकारादि की स्वीकृति) स्वीकार करना, तंत्र, मंत्र और यंत्र की पिटारी में अद्भुत करिश्मे दिखाना आदि इस साधनात्मक रहस्यवाद के लक्षण हैं जिनसे प्रसादजी का दूर का भी सम्पर्क या सम्बन्ध नहीं था। इसीलिए 'लहर', 'आँसू' या 'कामायनी' किसी में भी इसका वर्णन नहीं मिलता है। या शब्दों और वाक्यों को द्रविड़ प्राणायाम करा कर प्रसाद जी को कोई साधनात्मक रहस्यवादी प्रमाणित कर दे, तो दूसरी बात है।

अद्वैतवाद की स्वीकृति, दाम्पत्य प्रेम-पद्धति में स्वच्छन्दता एवं पवित्रता, दैन्य एवं आत्मसमर्पण की भावना, प्रतीकात्मकता और मुक्तकगीति शैली आदि

जो इसकी प्रवृत्तियाँ मानी गई हैं[1] उनमें से कुछ का विकास कामायनी में अच्छे ढंग से हुआ है।

भारत दर्शन की प्रकृत भूमि है। यहाँ कितने ही दार्शनिक मतों का प्रवर्तन हुआ किंतु सबका मूलस्वर किसी न किसी रूप में अद्वैतवाद का ही रहा है। इस सारी सृष्टि का विकास उसी के ब्रह्म से होता है और अंत में पुनः यह उसी में लोप भी हो जाती है। इसी तथ्य को विभिन्न दर्शनों में,विभिन्न प्रतीकों और पद्धतियों से समझाया गया है। ब्रह्म के जागरण और सुषुप्ति काल के रूप में सृष्टि की रचना और लय का विधान किया गया है। प्रसाद जी ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया गया है। 'कामायनी' के प्रारम्भ में ही सृष्टि का प्रणय और उनमें उसी परम सत्ता का आकुंचन और उन्मेष है।

ब्रह्मोन्मुखी स्वच्छन्द एवं पुनीत प्रेम भावात्मक रहस्यवाद का अनिवार्य अंग है जिसका स्वल्प विकास ही 'कामायनी' में हो सका है। नटराज के चरणों में व्यक्त श्रद्धा उसी का एक रूप है।

अनन्त लोक की यात्रा भी रहस्यवाद की एक प्रवृत्ति मानी गई है जिसमें न केवल भावना की ही प्रगति होती है, वरन् संपूर्ण हृदय और आकांक्षा की भी।[2] कामायनी में यह प्रवृत्ति मनु आदि के आनन्द लोक की यात्रा में दिखाई पड़ती है। इस यात्रा में मनु की भावना, विचार और आकांक्षा सभी की प्रगति होती है।

---

१. डा० गणपतिचन्द गुप्त : साहित्यिक निबन्धावली, पृ० ३६३-६५

२. प्रो० केशरीकुमार : हिंदी निबंधावली (बिहार विश्वविद्यालय प्रकाश) पृ० २६४।

१७

कामायनी में प्रतीक

[डॉ० श्रीमती राजकुमारी मित्तल, एम० ए०, पी-एच० डी०]

आधुनिक साहित्य में कामायनी का प्रमुख स्थान है जिसमें ऐतिहासिक कथा के माध्यम से मन की विभिन्न अवस्थाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। मानव मन जब अहं भाव से पूर्ण होता है तब उसे अनेक क्लेश व संघर्ष का सामना करना पड़ता है लेकिन समरसता का भाव आने पर वह आनन्द से परिपूर्ण हो उठता है अतः कामायनी में मन की क्लेशमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति का वर्णन है जिसे मनोमय कोश से आनन्दमय कोश की जीवयात्रा भी कहा जा सकता है। स्वयं प्रसाद जी ने कामायनी के आमुख में इस तथ्य की ओर इंगित किया है—'यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिये मनु और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए भी सांकेतिक अर्थ को भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता पूर्वक लग जाता है।" स्वयं कवि ने कामायनी में निहित प्रतीक रूप योजना का स्पष्टीकरण कर दिया है कि कामायनी ऐतिहासिक कथा पर आधारित होते हुये भी सांकेतिक गुणों से पूर्ण है।

यह निर्विवाद है कि कामायनी में मनु, श्रद्धा आदि का सांकेतिक अर्थ भी है। विज्ञ आलोचकों ने इस सांकेतिक अर्थ को रूपक तत्व के अन्तर्गत भी रखा है। लेकिन यह सांकेतिक अर्थ रूपक तत्व के अन्तर्गत न रखा जाकर प्रतीकात्मक ही कहा जायेगा क्योंकि रूपक में प्रतीक लाने की आवश्यकता नहीं होती है जबकि प्रतीक सांकेतिक ध्वनि की अभिव्यंजना हेतु ही प्रयुक्त किये जाते हैं

जैसे श्रद्धा मनु, इड़ा आदि ऐतिहासिक व्यथा के पात्र होने के साथ-साथ मन की विभिन्न अवस्थाओं के प्रतीक भी हैं।

प्रसाद जी ने स्वयं ही मनु आदि का प्रतीकात्मक अर्थ वेदों की ऋचायें उद्धत कर प्रतिपादित किया है उनकी कामायनी में यही भाव हर सर्ग में स्पष्ट ध्वनित होता है। अतः मनु की कथा में मन की कथा अनुस्यूत है जिसमें मन की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण विवेचन किया गया है। मन वह है जिससे मनन किया जाये अतः जहां मनन है वहीं चेतना है और चेतना से अंह की भावना ध्वनित होती है जो मन के अनेक संकल्प विकल्प की स्थिति की अभिव्यक्ति करती रहती है इसीलिये कामायनी के प्रत्येक सर्गों के नाम मनोवृत्तियों के आधार पर ही रखे गये हैं। किंकर्त्तव्यविमूढ़ मन चिंताग्रस्त हो उठता है वह कर्म से निश्चेष्ट हो केवल मननशील या चिंतन ही करता है। अतः चिंता सर्ग मन की उस चिंतन शील अवस्था का प्रतीक है। जहां निश्चेष्ट मन अनेक संकल्प विकल्पों के ताने-बाने बुनता रहता है। यहां मन तटस्थ होकर जीवन की सफलता, असफलता का विश्लेषण करता है।

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में।
भोले थे, हां तिरते केवल सब विलासिता के नद में।

मनु देवताओं के विनाश, उनके अमरत्व के उपहास का कारण खोजने में व्यस्त हैं। यहां देव इन्द्रियों के प्रतीक हैं जो मन को निर्बाध पुष्टि की ओर प्रवृत्त करते रहते हैं और नियति विधान को तोड़ उच्छृंखलता की ओर अग्रसर करते हैं तभी मन में प्रलय हो जाता है अर्थात् जब मन अबाध इन्द्रिय लिप्सा का दास हो जाता है तब वह उन्नत शील अवस्था की ओर अग्रसर हो निम्न अवस्था अन्नमय कोश में ही रह जाता है और उसकी सम्पूर्ण चेतन शक्ति माया के जल में डूब जाती है। चेतन शील मन धीरे से सारे अवगुंठन खोल चिंताग्रस्त मनु मन के काम में कह उठता है—

आज अमरता का जीवित है, मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,
आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम पात्र भय सा निष्कंभ।

अर्थात् मन के अहंकार से ही देवताओं-इन्द्रियों की निर्बाध तुष्टि भावना-

का नाश हुआ। जब मन उस अहंकार के पाश को काटने में सफल होता है तब उस असीम शक्ति की ओर अग्रसर होता है जो कण-कण में व्याप्त है इसीलिये आशा सर्ग में मन की चिंतन शील अवस्था नव जीवन की आशा में परिणत हो जाती है जहां मन निष्क्रियता का परित्याग कर आशा से परिपूर्ण हो उठता है और वही विध्वंस से पूर्ण सृष्टि उसे नवीन रूप में जनजीवन का संदेश देती प्रतीत होती है—

यह कितनी स्पृहणीय बन गई।
मधुर जागरण सी छविमान।
स्मिति की लहरों सी उठती है।
नाच रही ज्यों मधुमय तान।

मन में आशा का संचार होने पर वह जीवन के कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त होता है परन्तु किसी वस्तु का अभाव उसे निरन्तर कचोटता रहता है। अभाव ग्रस्त मन यह समझने में असमर्थ है कि मैं क्या भूल गया हूँ—

मैं भी भूल गया हूँ कुछ, हां स्मरण नहीं होता क्या था।
प्रेम, वेदना, भ्रांति या कि क्या ? मन जिसमें सुख सोता था।

जीवन की आशा के साथ साथ अहंभाव भी जागृत होता है और मैं भी कुछ हूँ यह भाव उसके लिये चेतना व स्फूर्ति का प्रेरणा स्त्रोत बन जाता है। चेतना से उत्फुल्ल मन रागात्मक वासना की ओर प्रवृत्त होता है। प्रकृति सुरम्य रूप द्वंद्व को जन्म देता है यही मन का क्रमिक विकास है।

रागात्मक भावों की उत्पत्ति होते ही मन वासना की ओर प्रवृत्त होता है। वहाँ मन हृदय की ओर झुकता है यह मन का हृदय की ओर उन्मुख होना ही श्रद्धा का सम्बल है जो कामायनी में हृदय का प्रतीक है। कामायनी में श्रद्धा सहानुभूति, दया, ममता, मधुरिमा, त्याग, क्षमा, अगाध विश्वास उत्साह, प्रेरणा स्फूर्ति आदि गुणों से परिपूर्ण है जो हृदय के कोमल और प्रवल दोनों रूपों की प्रतीक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में श्रद्धा को हृदय की संकल्प क्रिया भी कहा है। इसलिए भी श्रद्धा का सम्बन्ध हृदय से जुड़ जाता है। प्रसाद जी ने भी इसे हृदय की उदार वृत्ति के रूप में चित्रित किया है—

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार,
एक लम्बी काया उन्मुक्त ।

सात्विक गुणों से पूर्ण यह सूक्ष्म वृत्ति मन का संचालन करती है। मन की सुपुप्त शक्ति को जागृत कर कर्म की ओर प्रवृत्त करती है एवं उसे पशु बलि आदि हिंसक कर्म से विरत करती है। परन्तु मन अत्यन्त चंचल है जो पवन से भी अधिक वेगगामी है और वह श्रद्धा के सम्पूर्ण आधिपत्य में प्रसन्न नहीं रह पाता है। किरात और आकुलि जो आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतींक हैं। उसे हिंसा के लिए उकसाते हैं। हिंसा का भाव उदय होते ही अहिंसा का वध हो जाता है। आसुरी प्रवृत्तियों का दास मन श्रद्धा के पशु—जो सहज जीव जया करुणा अर्थात् अहिंसा का प्रतीक हैं--बध कर देता है यहीं श्रद्धा मन से विलग होने लगती है और मन को श्रद्धा के साहचर्य में अब सुख की उपलब्धि नहीं होती है। अतः अतृप्त मन इड़ा की ओर प्रवृत्त होता है।

इड़ा बुद्धि की प्रतीक है। कामायनी का मनु-मन—जब निर्बाध वासना व अधिकार लिप्सा की भावना से तृप्त नहीं हो पाता। तब वह सुख और आनन्द की प्राप्ति के लिए बुद्धि व तर्क के द्वारा लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। प्रसाद जी ने इड़ा के व्यक्तित्व में बुद्धि का प्रतीकात्मक चित्र खींचा है। इड़ा के व्यक्तित्व में इसी कारण तर्क, भौतिक ज्ञान विज्ञान, त्रिगुण आदि सभी तत्वों का समावेश हो गया है।

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्वल तम शशि खंड सदृश था स्पष्ट भाल।
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए।
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिये
चरणों में थी गति भरी ताल।

प्रसाद जी ने भी इड़ा सर्ग में बुद्धि ही कहा है। क्लेश युक्त मन में बुद्धि का संवेग उसे कर्म की ओर प्रवृत्त करता है—

जो बुद्धि कहे उनको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय।

श्रद्धा हृदयपक्ष की रागात्मिका प्रवृत्ति से विरत मन तर्क शीला बुद्धि की ओर झुकता है। भोग एवं वासना से युक्त जीवन यापन करने का आकाँक्षी मन तर्क शीला बुद्धि द्वारा समस्त वैभव को प्राप्त कर लेना चाहता है। यहां इडा व्यवसायिक बुद्धि का प्रतीक है जो मनु से मिलते ही सारस्वत प्रदेश की स्थापना की बातें करती है और मनु उसका भाग मांगते हैं। भौतिक सुखों से आकृष्ट मन बुद्धि को जीवन की अखण्डता के लिये प्रयुक्त न कर वर्ग भेद को जन्म देने में प्रयुक्त करता है और उसका सदुपयोग न कर उसे अपनी वासना पूर्ति का साधन बना लेता है। वह तर्क शीला बुद्धि पर अपना एकाधिपत्य कर लेना चाहता है पर बुद्धि को मन का प्रभुत्व सहन नहीं है वह इसे मन की आत्मजा कह अन्यायपूर्ण कृत्य समझ घोर विरोध करती है अतः मन और तर्क शीला बुद्धि में विरोध उत्पन्न हो जाता है। निर्बाध अधिकार आज तक कोई भी नहीं भोग सका है। ऐसे अनेक तर्क वितर्क द्वारा सद्बुद्धि मन को सदाचार की ओर प्रवृत्त करती है पर अति बुद्धिवाद के मोहपाश में आबद्ध मन ऐसा कुछ भी सुनने को तत्पर नहीं है बस यहीं मन और बुद्धि का संघर्ष होता है। सारस्वत नगर में प्रजा व मनु के बीच भैरव तांडव युद्ध मन और बुद्धि का ही संघर्ष है जिसमें मन धराशायी हो जाता है। इस संघर्ष के पश्चात् मन का तर्कशीला बुद्धि पर से विश्वास उठ जाता है और चेतना प्राप्त होने पर अर्थात् विवेक जागृत होने पर वह पुनः हृदय परा-रागात्मिका प्रवृत्ति की ओर उन्मुख होता है। हृदय की ओर प्रवृत्त हुआ मन पार्थिव जगत के प्रपंचों से विरत् होने लगता है एवं निर्वेद का आश्रय ले मन की शांति प्राप्त करने के लिये भटकने लगता है लेकिन श्रद्धा को त्यागकर उसे कहीं भी शांति प्राप्त नहीं होती है। सर्वत्र भटकने के पश्चात् वह पुनः हृदय का सम्बल ग्रहण करता है। श्रद्धा आकुल मन की व्यथा अनेक भावों से दूर करने का प्रयत्न करती है :—

इस देव द्वन्द्व का वह प्रतीक—
मानव ! कर ले सब भूल ठीक।

लक्ष्य भ्रष्ट मन शून्यता में इतना निमग्न हो जाता है कि उसे कहीं भी कुछ दृष्टिगत नहीं होता है लेकिन अज्ञान का आवरण हटते ही उसे यह प्रकृति सर्वशक्ति सम्पन्न प्रभुत्ता से युक्त जान पड़ती है और वह पुकार उठता है—

देखा मनु ने नर्त्तित नटेश,
हतचेत पुकार उठे विशेष।
"यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल,
उन चरणों तक, दे निज संबल,
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल,
पावन बन जाते हैं निर्मल ?

यहां अन्नमय कोश से मन मनोमय कोष में पहुँच जाता है जहां हृदय की चेतन शक्ति उसे समग्र रूप का दर्शन कराती है और वहीं उसे इच्छा, ज्ञान और क्रिया के त्रिकोण या त्रिपुर का दर्शन होता है। ये तीनों ही हृदय की चेतना शक्ति के प्रतीक हैं जब मन को इस चेतना शक्ति की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है तो इन तीनों शक्तियों का पृथक् रूप एकाकार हो जाता है—

त्रिदिक् विश्व, आलोक बिन्दु भी तीन दिखाई पड़े, अलग वे।
त्रिभुवन के प्रतिनिधि थे मानो, वे अनुमिल थे किन्तु सजग थे।
एक एक की स्थिर हो देखो इच्छा मन क्रिया वाले थे।
स्वप्न, स्वाप जागरण भस्म हो, इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।

यहां मन विज्ञान मय कोश में पहुँच जाता है उसको जागृत स्वप्न एवं सुषिप्ति तीनों अवस्था में हो जाती है और वह स्थितप्रज्ञता की उस स्थिति में पहुँच जाता है जहां उसे नानात्व में एकत्व की प्रतीति होती है। कामायनी में मानस शब्द का प्रयोग इसी समर सत्ता का प्रतीक है। कैलाशगिरि की यात्रा के लिए नाना व उसे प्राप्त करना मन की समरसत्ता का ही प्रतीक है। इसे जीवन की आनन्दमयी अवस्था या आनन्द कोश कहा गया है। इस समर-सता को प्राप्त कर मन लौकिक एवं पारलौकिक सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। और उसे आत्मसाक्षात्कार के द्वारा अखण्ड ज्योति के दर्शन होते हैं। श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र को इड़ा के हाथ में सौंप देना भी इस समन्वय या समरसता का प्रतीक है।

यह तर्कमयी तू श्रद्धामय, तू मननशील कर कर्म अभय।

अर्थात् तर्क, श्रद्धा और मन का मिलन ही मानव को श्रेष्ठ पथ पर अग्रसर कर सकता है। इसीलिए श्रद्धा मानव प्रतीक कुमार को बुद्धि के हाथ सौंप समरसता के प्रचार का अनुरोध करती है।

धार्मिक संकीर्णता भी यहां नष्ट हो जाती है क्योंकि वे धर्म का प्रतीक वृषभ यहां उत्सर्ग कर दिया जाता है। विश्वबन्धुत्व की भावना की स्थापना में लीन मन यहां अखण्ड आनन्द में निमग्न हो जाता है।

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।

आनन्द की पराकाष्ठा में कामायनी का समापन हो जाता है। अतः कामायनी में सभी पात्र एवं प्रसंग एक विशिष्ट सांकेतिक अर्थ लिये हुए हैं।



१८

कामायनी के काव्य रूप पर प्रश्न चिन्ह

[डॉ० विनय एम० ए०, पी-एच० डी०]

प्रसाद यदि "लहर" के बाद "कामायनी" की रचना न करते तो हिन्दी साहित्य में उनका क्या स्थान होता, यह अब केवल कल्पना का विषय है। हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य कि प्रसाद "कामायनी" के बाद कुछ और न दे पाये और "कामायनी" का सौभाग्य कि उसका रचयिता स्वर्ग सिधार गया। "कामायनी" का सौभाग्य इसलिये कि कवि की अनुपस्थिति में उसका सही मूल्यांकन हो पाया, यह बात अलग है कि आगे आने वाली रचनाओं की तुलना में उसकी अद्वितीयता टिक पायेगी या नहीं। इसके साथ बराबर मेरे मन में यह बात आती है कि कहीं "कामायनी" पर सोचने की दिशा में हम रूढ़ तो नहीं होते जा रहे हैं ? एक बार जिस रचना को एक सिंहासन पर बिठा दिया, उस पर किसी अन्य रचना के लिये स्थान बनाते समय कहीं डर तो नहीं रहे।

जहाँ तक शास्त्रीय लक्षणों का प्रश्न है, आज उनका कोई महत्व नहीं रह गया। कारण यह है कि आज की प्रत्येक वस्तु के लिये पुराना सोचा उपयुक्त नहीं, और न पुराने शब्द, अतः यदि कोई कहे कि "कामायनी" महाकाव्य नहीं है, तो भी चौंकने की कोई बात नहीं है, हां, समझने की अवश्य है। खतरा इसलिये भी नहीं होना चाहिये कि महाकाव्यत्व किसी रचना या रचयता की शक्ति के मूल्यांकन का एक मात्र आधार नहीं। वर्जिल से लेकर मैक्डालन तक, भामह से लेकर विश्वनाथ तक महाकाव्य के लक्षणों में जो परिवर्तन हुआ, स्थूल और सूक्ष्म तत्वों का जो संघर्ष चला उससे भी मेरे तर्क की पुष्टि होती है कि परम्परागत लक्षण एक मात्र निर्णायक नहीं।

"कामायनी" जिस युग की रचना है वह युग एक प्रकार से अपने अतीत से असम्बद्ध होने की घोषणा कर चुका था। छायावाद ने सबसे पहले इसका उद्घोष किया और भाषा, भाव, विधान सभी क्षेत्रों में पुराने को नकारने की प्रवृत्ति अपना कर नये को प्रतिष्ठित किया। यही कारण है कि अनेक ऐसी रचनाएँ जिनमें परम्परागत लक्षणों का काफी निर्वाह हो पाया था वह गौरव को प्राप्त न कर सकीं। वह चीज क्या रही होगी जिसके कारण प्रियप्रवास, साकेत, नूरजहां, अंगराज सेनापति कर्ण के विषय में चर्चा उस स्तर तक नहीं पहुँची और लक्षणों का निर्वाह न होने पर भी "कामायनी" पर इतना विचार हुआ। मेरे मत में वह बात थी-परम्परा की अस्वीकृति और प्रसाद अच्छी तरह जानते थे कि परम्परा को स्वीकार करने का मतलब होगा अपने को बनी बनाई दीवार में फिट करना जिसे वह अपने लिये नहीं चाहते थे इसी कारण उन्होंने राम और कृष्ण पर न लिख कर एक नये विषय का संधान किया। और, शायद उनके मन में यह भी रहा हो कि उनकी रचना का मूल्यांकन परम्परागत लक्षणों के आधार पर न हो। इस पर भी आश्चर्य होता है कि समालोचक "हिमगिरि" शब्द में भी मंगलाचरण बिना खोजे नहीं माने। यह बात अलग है कि इस खोज से कृति के साथ अन्याय हुआ या न्याय।

कथा—निर्विवाद रूप से "कामायनी" में कथा है—और, देवासुर संग्राम जल-प्लावन से मनु का वचना, मनु-श्रद्धा का मिलन, आकुलि की प्रेरणा से काम, यज्ञ, इड़ा से भेंट, और हिमालय पर आनन्द की प्राप्ति आदि घटनाओं को कथा-शृंखला के रूप में जोड़ा गया है। इस संघटन में अनेक कमियां रह गई हैं, वस्तु-शिल्प शिथिल है जिसे महा काव्य के भाव-विस्तार से बांधा गया है। शायद इसी कारण कुछ लोगों ने "कामायनी" के महाकाव्यत्व का कारण उसकी सुविशाल प्रगीतात्मकता को माना है।

भाव-विस्तार के समान काव्य रूप का सम्बन्ध भी कवि की शक्ति का परिचायक है। अनेक समर्थ कवि अपनी अनुभूति को खण्ड रूप में जितनी कुशलता से व्यक्त कर सकते हैं उतनी कुशलता से प्रबन्ध नहीं। प्रसाद जी ने भी इसके पूर्व कोई प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा था अतः उन्होंने अपनी अनुभूति को प्रबन्ध में बांधने का प्रयास (सुव्यवस्थित रुप से) "कामायनी" में किया,

यही कारण है कि उनके एक मात्र प्रबन्ध काव्य में कथा संघटन शिथिल और भाव-चित्रण अधिक पुष्ट है।

कथा के भौतिक धरातल का विस्तार "कामायनी में अत्यन्त अल्प हैं। "कामायनी" में वर्णित सत्य और असत्य का संघर्ष मानसिक धरातल पर होता है। अतः "कामायनी में मानवात्मा या मानव-चेतना का विकास है। यही कारण है जिससे प्रसाद की परम्परा-मुक्त दृष्टि से रचित कामायनी में भौतिक संघर्ष सर्वत्र नगण्य है। जहां कहीं भी यही संघर्ष विद्यमान हैं वहीं वह आकस्मिक लगता है—उदाहरण के लिये मनु और श्रद्धा के मिलन के उपरान्त मनु का श्रद्धा को छोड़कर जाना मानसिक वृत्ति के असन्तोष के कारण हुआ। संघर्ष सर्ग में भी संघर्ष का रूप स्थूल नहीं है। छायावादी कवि की मनोवृत्ति स्थूल संघर्ष की वह कल्याणकारी, रचनात्मक और अपनी परिणति में मगल-मयी रूप रेखा न उभर सकी जो जीवन में कर्म-संघर्ष की प्रेरणा दे सके। इस लिये प्रसाद ने संघर्ष का क्रीड़ा क्षेत्र भौतिक जगत में न रख कर मानव मन में चित्रित किया। मैं इस स्थापना को बहुत महत्व देता हुआ भी महिमामय स्थापना नहीं मान सकता, क्योंकि इच्छा, ज्ञान, क्रिया का त्रिपुर की असम्ब-द्धता की व्याख्या मौलिक रूप से असंगत है। यदि मानसिक जगत के बिखराव और समन्वय को ही सत्य-असत्य का निर्णायक मान लिया जाय तो कर्म की महत्ता कम होती है और भारतवर्ष का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा कि उसके मनीषियों ने कर्म की उपेक्षा करके चेतना के पक्ष पर अधिक बल दिया, जिससे उस देश की जनता मौखिक चिन्तन में लीन होने लगी और कर्म विमुख होकर पराधीन बनने पर विवश हुई। यदि कामायनी में इच्छा, ज्ञान और क्रिया का संघर्ष जीवन-संग्राम के मध्य होता और बाद में उसका समन्वय किया जाता तो यह काव्य कर्म क्षेत्र में भी महान उपलब्धि हो सकता था।

कर्म-क्षेत्र को उजागर बनाने का सबसे महान आन्दोलन भगवान कृष्ण ने चलाया। उन्होंने गीता के कर्मयोग के माध्यम से जीवन का क्रीड़ा क्षेत्र जगत रक्खा-बहुत दूर तक देखें तो अवतारवाद की प्रतिष्ठा में भी यही भावना है। उसके द्वारा तत्कालीन आचार्यों ने भगवान को भी जगत के कर्म क्षेत्र का एक मुख्य पात्र बनाकर कर्म की सर्वोपरता सिद्ध की। यह सत्य है कि विनाश की

अन्तिम सीमा पर पहुँच कर भी यदि कर्ममय व्यक्ति गतिशील रहे तो भी नव-निर्माण सम्भव है। लेकिन निर्माण के अजस्त्र स्त्रोत भी कर्म हीन के लिये व्यर्थ हो जाते हैं। अपने विशाल कथा-सन्धान में प्रसाद व्यक्ति को कर्ममय वनाने के अधिक स्थल न खोज पाये इसीलिये उन्हें घटनाओं का आधार छोड़ कर चेतना के स्वरों को ढूंढ़ना पड़ा जो अपेक्षाकृत सरल था। आखिर चरम आनन्द की सिद्धि संसार से मांग कर होती है - यह स्थापना किसी भी कर्ममय जाति के लिये कितनी आत्म घातक है। धर्म और आचरण की बैरंगी पता को लिये हम चाहे कितना ही विदेशियों के आचरण की भर्त्सना करें किन्तु जब तक उनमें कर्माचरण (चाहे धर्माचरण न हो) विद्यमान है तव तक वे हमें खिलाते जायेंगे और हम से अधिक सशक्त और समर्थ वने रहेंगे। इसलिये आत्मा के स्तर पर धर्माचरण को संदेश देने वाले काव्य से कर्माचरण का सन्देश देने वाला काव्य अधिक गौरवशाली है। और मैं समझता हूँ "कामायनी" कर्माचरण का सन्देश देने में भारतीय आदर्श जीवन पद्धति का स्पर्श नहीं कर पाई। यहीं पर "कामायनी" अपने कथा रूप में मानवता के विकास की कथा होते हुये भी उस विकास के सौपानों में कर्म की उपेक्षा करने के कारण महान रचना न वन सकी।

सन्देश:—कथा के इस स्थूल-विकास के अभाव में-जैसा कि मैंने पहले कहा-"कामायनी" कारने मानव के सूक्ष्म भाव का विश्लेषण अत्यन्त कुशलता से किया है। इस पक्ष में कवि ने भाव, ज्ञान और कर्म वृत्ति के असन्तुलन को मानव के सम्पूर्ण-राजनैतिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक असन्तोष का कारण वताया है। यह स्थापना नई न होते हुए भी स्वयं में महत्व पूर्ण है क्योंकि भौतिक जगत की शृंखलता मानव के मन का प्रतिविम्व है। पारस्परिक अविश्वास, धोखा, करनी-कथनी में अन्तर, या व्यक्ति और समष्टि दोनों स्वरों पर कष्टकारक है। विनाशकारी युद्धों की पृष्ठभूमि मानव मन के असन्तोष में हैं, और असन्तोष का कारण है वृत्तियों में असामंजस्य। प्रसाद की दूरदर्शिनी प्रतिभा ने कथा के भौतिक पक्ष की कमी मानसिक पक्ष के विराट आयोजन से दूर कर दी, इसमें संदेह नहीं।

प्रसाद ने काम को व्यापक जीवन-इच्छा के रूप में लिया : और मनु में कर्म की आसक्ति दिखाई है :—

कर्म यज्ञ से जीवन के
सपनों का स्वर्ग मिलेगा
इसी विपिन में मानस की
आशा का कुसुम खिलेगा।

किन्तु यह आसक्ति जीवन-संग्राम में अनेक कष्ट सहन करते हुए खड़े रहने की शक्ति कर विकास करने में असमर्थ रही। और एक प्रकार से मनु को स्वप्नों का स्वर्ग ही प्राप्त होता है जिसकी यथार्थता संदिग्ध है।

कामोपासना के रूप में प्रसाद ने मानव की दुर्दमनीय अन्तरवृत्ति का उद्घाटन किया है। सिद्धान्त के नकारात्मक पक्ष में प्रसाद ने कामोपासना, बुद्धिवाद, अहंकार, निरंकुश अधिकार लालसा और भौतिक वैभव का खण्डन किया है। काम की उपासना मानव जीवन का ध्येय नहीं होना चाहिये-इस भावना से ग्रस्त मानव अन्ततः निराश होता है और फिर सब कुछ छोड़ने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता। क्योंकि कामोपासक प्रारम्भ से ही अनासक्ति का अभ्यासी नहीं होता अतः उसके जीवन में आकस्मिक अनासक्ति का प्रवेश होता है जो निराशा प्रस्तुत होने के कारण सम्पूर्ण रूप से मंगलमय नहीं हो सकती।

बुद्धिवाद की खण्डनात्मक व्याख्या कामायनी में ठीक तरह से नहीं हो पाई। यहां बुद्धि का प्रतीक इड़ा है पर वह किसी भी स्थल पर मनु को अनाचरण की ओर प्रेरित नहीं करती। फिर भी व्यक्ति रूप में इड़ा को दोष क्यों दिया गया? यह दोष प्रसाद के प्रबन्ध-शिल्प का है। वे बुद्धि की उपचर्चा और उसके प्रभाव को संचित रूप में प्रस्तुत नहीं कर सके। इड़ा सर्ग में विभिन्न पदों में बुद्धिवाद का आख्यान है किन्तु उसमें जीवन के पक्ष के आधार पर वह तारतम्य नहीं जिससे पाठक को यह पता चले कि बुद्धि इस कारण से और इतने अंश में दोषपूर्ण है।

अहंकार और निरंकुश, अधिकार लालसा अन्योन्याश्रित हैं। अधिकार की लालसा अहंकार से प्रसूत होकर व्यक्ति को भौतिक वैभव की ओर प्रेरित

करती है। और अनवरुद्ध अहंकार के विजयी होने पर व्यक्ति की शक्ति शोषण करती है। प्रसाद ने मनु के निरंकुश चिन्तन और अहंकार को पराजय दिखाकर शोषण का विरोध किया है।

प्रतिपाद्य :—कथा में प्रसाद जीवन के जिस व्यावहारिक संघर्ष की उपेक्षा कर गये हैं, उसी का प्रतिफलन प्रतिपाद्य में हुआ है। कर्म-विमुख जीवन चिन्तन आन्तरिक रहस्यों का उद्घाटन करता है। इसलिये कामायनी का प्रतिपाद्य था। मुख्य कार्य शैवागम्य दर्शन के आधार पर आनन्द की प्राप्ति है। इस आनन्द की प्राप्ति में कवि के व्यक्तिगत जीवन की धारणायें अधिक उजागर रूप में व्यक्त हुई हैं। प्रसाद के जीवन में करुणा, उदारता और सौन्दर्य के प्रति भावात्मक दृष्टि (जो छायावाद की देन हैं) का प्राधान्य रहा। अतः वे भी कैसे अधिक अन्तमुंखी होते गए। इसी कारण उनका नायक भी हर चोट को खाकर अन्तर की ओर दौड़ता है। भाववृत्ति और ज्ञानवृत्ति का उन्नयन प्रसाद ने इस सीमा तक किया कि कर्मवृत्ति दब गई तथा युग जीवन का व्यापक चित्रण नहीं हो पाया। प्रसाद के युग में जीवन की विश्रान्ति, असन्तुलन, राजनैतिक असन्तोष, पराधीनता सब कुछ था—पर किसी भी एक पक्ष की प्रबल अभिव्यक्ति नहीं हुई। अनेक खण्ड अनुभूतियां को कवि ने संकेत रूप में किया। इड़ा सर्ग में काम द्वारा कथित "हो शाप भरा तव प्रजातन्त्र, दुःख देगी यह संकुचित दृष्टि" कुछ पंक्तियां कुछ अंशों तक यह सिद्ध करतीं हैं कि प्रसाद में भौतिक संघर्ष को चित्रित करने की शक्ति थी और यह शक्ति उनके नाटकों के संघर्ष में है पर वह अपने प्रबल वेग में कामायनी में व्यक्त न हो सकी इसलिए सम्पूर्ण काव्य मानव-चेतना के उथल-पुथल का स्थल बन गया। यदि प्रसाद और उन्मुक्त दृष्टि से देखते तो अविकसित समाज के नाम पर से एक विकसित समाज की सृष्टि कराकर सिद्धि प्राप्त कराते किन्तु मध्यवर्ती सोपान अन्तर के गूढ़ रहस्यों के उद्घाटन में खो गया। अतः कामायनी का प्रतिपाद्य अंतरिम दृष्टि से महाकाव्योंचित हो सकता है बहिरंग दृष्टि से नहीं—

चरित्र सृष्टि—ऐतिहासिक चरित्र के दो व्यक्तित्व होते हैं। एक उसका मूल रूप दूसरा कवि द्वारा निर्मित, यद्यपि रचना में इन दोनों व्यक्तित्वों को

सर्वथा भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। फिर भी कभी-कभी ऐतिहासिक व्यक्तित्व से अधिक मौलिक और उपादेय कवि द्वारा निर्मित व्यक्तित्व होता है। कामायनी में मनु, श्रद्धा और इड़ा तीनों पात्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व होते हुए भी मनु, रागात्मिकावृत्ति और बुद्धि के प्रतीक हैं। इसी रूप में कवि ने रूपक का आरोप किया है। मनु की जीवन यात्रा मन के संकल्प विकल्प की यात्रा है जो भौतिक सुखवाद से चलकर आध्यात्मिक आनन्द तक चलती है। मन अपनी निर्विकारिता में अनेक वाह्य प्रभाव ग्रहण करता है। सबसे पहले वह आसुरी वृत्तियों का शिकार होता है फिर बुद्धि के अभिशाप भौतिकवाद का, किन्तु रागात्मिका वृत्ति अन्ततः उसे आनन्दमय के कोष तक ले जाती है।

प्रसाद के तीनों चरित्रों में श्रद्धा का चरित्र ही ऐसा है जो अंतरंग और बहिरंग दोनों दृष्टियों से अविवादास्पद है। श्रद्धा स्त्री रूप में शाश्वत स्त्रीत्व की प्रवृत्तियों से मुक्त है और वृत्ति रूप में वह मनका चैतन्य है। चैतन्य को जागृतावस्था में मन अशान्त नहीं होता और सुप्तावस्था में अशान्त रहता है। प्रसाद का यह रूपक श्रद्धा के चरित्र की पूर्णता प्रदान करता है। जहां तक मनु का प्रश्न है वह उदात्त चरित्र नहीं बन पाया, क्योंकि उसमें जीवन से बहिरंग का अभाव है। मनु रूप में वह पौरुष की शक्ति का प्रतीक न बनकर सर्वथा एक असहाय और असहायता से अभावात्मक प्रेरणा प्राप्त किये हुए अस्थिर व्यक्ति के रूप में उभरता है। मनु के चरित्र में कर्मठ व्यक्ति की शक्ति नहीं आ पाई। हां, मन रूप में वह अपने भौतिक रूप की अपेक्षा अधिक सफल है। यहां मैं फिर संकेत कर दूं कि शायद प्रसाद मनु को परम्परा-लक्षित वीरोदात्त नायक नहीं बनाना चाहते थे यदि चाहते तो 'चन्द्रगुप्त' के सृष्टा के लिए यह कठिन कार्य न होता। अतः यदि मनु उदात्त चरित्र नहीं तो इसमें ग्रन्थ या ग्रन्थकार का अवमूल्यन नहीं होता। फिर भी जागरूक पाठक प्रसाद से यह पूछ तो सकता ही है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। जिस मनस्तत्व के विकास की गाथा प्रसाद कहना चाहते थे उसमें कर्म-सौन्दर्य का आलोक आ जाता तो भी उस सिद्धि में कोई बड़ा आघात नहीं होता।

शैली—शैली कवि के भावलोक की बहिर्रेखा होती है। जिसमें भावों का विकास होकर एक निश्चित ध्येय का प्रणयन करता है। कामायनी में

निश्चित रूप से प्रबन्ध शैली की सम्पूर्णता का अभाव है, उसमें प्रगीतात्मकता का आवेग इतना प्रबल है कि पाठक को कथा के सूत्र खोजने पड़ते हैं। कार्य व्यापार के अभाव के कारण प्रसाद जो को भावों की अधिकाधिक सृष्टि करनी पड़ी और मानवीय भावों के विस्तार के लिये कल्पना की ऊँची उड़ान अतः कामायनी की भाषा में चित्रमयता अधिक है। लज्जा के वर्णन में कवि ने अत्यधिक कौशल से उसके अव्यक्त रूप को आकार दिया है।

चंचल किशोर सुन्दर ताकी
मैं करती रहती रखवाली
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ
जो बनती कानों की लाली।

कामायनी में यह अव्यक्तकरण व्यक्तिकरण अथ से इति तक हुआ है। मानवीय भावों और दार्शनिक विचार धारा की अभिव्यक्ति दोनों में कवि ने चिन्तन, मनन आदि के द्वारा कथा को गति दी है। अपनी वृत्ति में अन्तर्मुखी काव्य के लिये यही शैली उपयुक्त भी हो सकती थी। किन्तु यह औचित्य जहां उसके प्रतिपाद्य की दृष्टि से तर्क संगत है वहां "हमा" शब्द के साथ इसकी संगति नहीं बैठती। और बैठ भी कैसे सकती थी। शैली की उदारता कर्म की आग में तपकर व्यंजित होती है—जहां कर्म का सघर्ष नहीं वहां शैली का औदात्य कैसे आयेगा, फिर भी कहीं-कहीं संघर्ष की तीव्रता से शैल में आवेग आ पाया है।

अन्तरिक्ष में हुआ शब्द हुँकार भयानक हलचल थी।
अरे आत्मजा प्रजा। पाप की परिभाषा बन शाप उठी।
क्या ही अच्छा होता कि यह आवेग आद्यन्त बना रहता।

समग्रतः इस काव्य का मूल्यांकन करते हुये मैं कहना चाहता हूँ कि छायावाद गहन अन्तर्जगत के कुहा-से बाहर निकल कर प्रसाद ने जिस साहस का परिचय दिया वह भारतीय कर्मवाद की अखण्ड अभिव्यक्ति, कथा-शिल्प के सुघटित विन्यास, कर्म क्षेत्र में संघर्षरत कर्ममय चरित्र के अभाव में भारतीय परम पुरुषार्थ की सिद्धि तक नहीं पहुँच सका।

———